खोटा बेटा

लेखक—

विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'

विनोद पुस्तक मन्दिर
हास्पिटल रोड, आगरा।

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण—मार्च १९५९
मूल्य ३)

मुद्रक—
राजकिशोर अग्रवाल
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।

खोटा बेटा

भूमिका

स्वर्गीय पंडित विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' हिन्दी कथा-साहित्य में अपनी अद्भुत वर्णन शक्ति मानवीय संवेदनाओं के सफल चित्रण, जनवादी दृष्टिकोण, सरल, सहज-ग्राह्य भाषा एवं शैली के कारण प्रेमचन्द के समकक्ष ठहरते हैं। समस्त हिन्दी कथा-साहित्य में अकेले 'कौशिक' जी ही ऐसे कथाकार हैं जो इस क्षेत्र में प्रेमचन्द के सबसे अधिक निकट हैं। 'माँ' और 'भिखारिणी' नामक इनके उपन्यास प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों में अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखे और पढ़े जाते हैं। इनकी 'ताई' शीर्षक कहानी विभिन्न कहानी-संग्रहों में संग्रहीत होती रही है और उसके बिना कोई भी कहानी-संग्रह पूर्ण नहीं माना जाता है। परन्तु इधर 'कौशिक' जी की ही कहानियों का संग्रह प्रकाश में नहीं आ पाया। उनके कुछ पुराने कहानी-संग्रह अवश्य उपलब्ध हुए हैं परन्तु आज कहीं भी उनकी चर्चा नहीं सुनाई पड़ती। इसी अभाव को दूर करने के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों में लुप्तप्राय: पड़ी हुई उनकी कहानियों का उद्धार कर यह कहानी-संग्रह हिन्दी के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे हमारी पीढ़ी एवं आगे आने वाली पीढ़ी 'कौशिक' जी के महत्व को पहचाने और उनका उचित मूल्यांकन करने का प्रयत्न करे। इसके पश्चात् शीघ्र ही 'कौशिक' जी के दो-तीन कहानी संग्रह और भी प्रकाशित किए जा रहे हैं। विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा के संचालक इस प्रयत्न में हैं कि वे 'कौशिक' जी के समस्त-साहित्य को उपलब्ध कर उसे प्रकाशित करें।

कहानीकार 'कौशिक' जी की कहानियाँ प्राय: संक्षिप्त होती हैं। वे एक ही कहानी में देश, समाज, जीवन की विविध समस्याओं को एक

साथ ही सुलझाने का प्रयत्न न कर जीवन के किसी विशिष्ट अँग को अपने कथ्य का विषय बनाते हैं और उनकी सशक्त लेखनी के चमत्कार द्वारा वह विशिष्ट अंग अपने पूर्ण, स्पष्ट एवं मनमोहक रूप में उपस्थित होता है। 'उलझन' से उन्हें विरक्त है; निराशा या अवसाद को वे अपने पात्रों के पास फटकने भी नहीं देते। उनके पात्र अपूर्व उमंग से भरे हुए जीवन-पर्यन्त संघर्षो में लगे रहते हैं। लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण, जिसमें आदर्श का भी गहरा पुट रहता है, पाठक को निरन्तर संघर्षरत रहने की प्रेरणा प्रदान करता रहता है। 'कौशिक' जी के साहित्य का यही महत्व है जो उन्हें अमर बनाने के लिए यथेष्ठ है।

—राजनाथ शर्मा

विषय-सूची

विजय

(अ)

जिस समय कुँअर रत्नसिंह की वयस पन्द्रह वर्ष की हुई, उस समय उन्हें अपनी हीन-अवस्था का ज्ञान हुआ। उनकी माता योगमाया अपने पति के कुछ विश्वस्त नौकरों के सहित गाँव में एकान्त जीवन व्यतीत कर रही थीं। रानी योगमाया के पति शिवसिंह एक छोटे से राज्य के स्वामी थे। वही राज्य उनकी जन्मभूमि था। अपनी पैत्रिक मान मर्यादा की रक्षा में राजा शिवसिंह का वैमनस्य एक ऐसे राज्य से हो गया जो उनसे अधिक शक्तिशाली था। पर वे स्वतन्त्र थे। किसी के आगे सिर झुकाना उनके लिये असम्भव था। परिणाम यह हुआ उन्होंने युद्ध में वीर गति पाई।

रानी योगमाया की प्रबल इच्छा थी कि वह चिता पर पति का साथ दे। किन्तु उस समय कुमार रत्नसिंह की अवस्था चार ही वर्ष की थी। रानी के सिवा उसका कौन था? पुत्र-प्रेम और पति-प्रेम में द्वन्द

हुआ और अन्त में पुत्र-प्रेम के सामने पति-प्रेम न ठहर सका। रानी योगमाया ने अपने राज्य से बीस कोस दूर जाकर शरण ली और अलंकार तथा जवाहिरात बेचकर जीवन के दिन बिताने लगी। उसका जीवन कुमार के सहारे ही चल रहा था अन्यथा संसार में कोई ऐसा आकर्षण नहीं था, जो उसके प्राणों को शरीर में स्थिर रखता। इस प्रकार ग्यारह वर्ष बीत गये।

कुमार की वयस १५ वर्ष की हुई। बचपन से ही वह शिकार का शौकीन था। वह लालसा अब बढ़ गई। एक दिन कुमार गाँव से दो कोस की दूरी पर अपने एक विश्वस्त नौकर शेरसिंह के साथ घूम रहा था। शेरसिंह महाराज शिवसिंह का एकमात्र सच्चा मित्र था। सच तो यह है कि अगर महाराज ने कुमार की रक्षा का भार शेरसिंह को न सौंपा होता तो महाराज की लाश शेरसिंह की ही लाश पर गिरती।

+ + + +

बड़ी देर तक व्यर्थ घूमते रहने पर कुमार का जी ऊब उठा। वह घर लौटने की इच्छा ही कर रहा था कि सहसा उसी समय तेजी से कोई जानवर सामने से आता दिखाई दिया। कुमार ने बन्दूक उठाकर निशाना लगाया। गोली सर में बैठी। जानवर चीख मार कर गिर पड़ा। पास में पहुंचकर कुमार ने देखा कि सुअर के शरीर में कई जख्म हैं और उन जखमों से खून वह रहा है। कुमार ने शेरसिंह को बुलाकर कहा—'मैंने तो एक ही गोली मारी परन्तु इसके कई घाव हैं और जख्म भी ताजे………………।"

कुमार अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि पसीने से तर तीन मनुष्य हाथ में भाला लिये आ पहुँचे। सुअर को मरा देख एक ने कहा—"बहुत दौड़ाया पर अब तो हाथ लगा!"

कुमार हक्का बक्का होकर तीनों की ओर देखने लगा। उनमें से एक ने कमर से रस्सी खोलकर सुअर को ले जाने के इरादे से बांधना

शुरू कर दिया।

कुमार क्रुद्ध हो पड़ा और बोला—"यह क्या ? इसे कहाँ लिये जाते हो ? मैंने इसे गोली से मारा है।"

कुमार का चेहरा लाल हो उठा। वह अपना शिकार दूसरे को देने को तैयार नहीं था।

उनमें से एक ने दबी जबान से कहा—"यह अच्छी रही। दो घण्टे से हम इसके पीछे दौड़ रहे हैं और अब यह इनका हो गया। सरकार ! गोली से सुअर नहीं मारा जाता ?"

कुमार का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने तलवार की मूंठ पर हाथ रख कर कहा—"देख वे ! संभाल कर बात कर, नहीं तो सुअर की लाश पर तेरी भी लाश गिरेगी।"

शेरसिंह ने मुसकरा कर कहा—'बेटा यह तुम्हारे किस काम का। ये विचारे इसके लिये तंग हुये। इन्होंने इसे जख्मी भी खूब कर डाला था इसलिये यह इन्हीं का शिकार हैं। इन्हें ले जाने दो। इन बेचारों का भोजन चलेगा।"

कुमार ने कहा—'कदापि नहीं ! मैंने इसे मारा अतएव मेरी चीज है। मुझे अपनी चीज पर अधिकार है। मैं यह कभी स्वीकार नहीं कर सकता। माँग कर भले ही ले जांय पर अधिकार जमा कर नही ले जा सकते।"

शेरसिंह के माथे पर बल पड़ गये। उसका चेहरा तमतमा उठा। आंखें लाल हो गईं। उसने कुछ कर्कश स्वर में कहा—'बार बार क्या कहते हो कि मेरी चीज है, मेरा अधिकार है।' दूसरे के जख्मी किये हुये सुअर पर इतना अधिकार ! बड़े शरम की बात है। जिस पर तुम्हारा अधिकार है, जो तुम्हारी चीज है, जिसे दूसरे हड़प किये बैठे हैं, उसकी तुम्हें खबर तक नहीं।"

एक साँस ही में शेरसिंह ने यह सब कह डाला और जब उसने

एक गहरी साँस ली तो ऐसा मालूम होता था कि उसके कलेजे से एक बड़ा कांटा निकल गया ।

कुमार चौंक सा पड़ा । उसके हृदय में अपनी उस अज्ञात चीज की कल्पनायें घूमने लगीं । कुमार ने कहा—"क्यों काका ? वह कौन चीज है जिस पर मेरा अधिकार है और जिसे दूसरे हड़प किये बैठे हैं ।"

कहने को तो शेरसिंह कह गया, किन्तु उसे अपनी भूल मालूम हो गई । पर तरकश से निकला हुआ तीर और जबान से निकली हुई बात तो वापस हो ही नहीं सकती । अब क्या किया जाय ? कुमार पूरी बात जाने बिना मानेगा ही नहीं । वह हृदय की कसौटी पर यही बात कस रहा था कि अभी इस बात के कहने का उपयुक्त समय आया है कि नहीं ?

शेरसिंह इसी उधेड़बुन में पड़ गया । बात कह कर मौन हो जाने से कुमार की उत्सुकता और बढ़ी । कुमार ने सोचा कि इसमें कोई गूढ़ बात अवश्य है । शिकारियों की ओर देख कर उसने कहा—'ले जाओ इसे ।' यह कह कर वह शेरसिंह से बोला—"चलो काका, घर चलें ।"

❀ ❀ ❀

दोनों घर की ओर चल पड़े । थोड़ी दूर चल कर कुमार रत्नसिंह ने कहा—"हाँ, काका ! मेरी बात का जवाब नहीं दिया ।"

शेरसिंह ने उदास भाव से कहा—"क्या उत्तर दें ?"

कुमार—"जो ठीक उत्तर हो ।"

शेरसिंह फिर चुप हो गया ।

कुमार—"आप सोच काहे करते हो ।"

शेरसिंह को सोच विचार का समय नहीं था । उसने एक मिनट में फैसला कर लिया कि जो होना था सो हो गया । अब असल बात कह देना ही चाहिये, परिणाम ईश्वर के हाथ है ।

शेरसिंह ने ठण्डी सांस भर कर कहा—"कुमार ! तुम्हें अभी तक

ज्ञात नहीं कि तुम कौन हो, तुम्हारे पिता क्या थे और तुम्हारी जन्मभूमि कौन है ?"

कुमार ने कहा—"नहीं ।"

एक एक करके शेरसिंह ने पिछली घटनायें बता दीं कि किस तरह स्वाभिमान और जन्मभूमि की स्वतन्त्रता की वेदी पर कुमार के पिता ने अपनी कुरबानी कर दी। पुरानी घटनाओं की स्मृति सजीव होते ही शेरसिंह का दबा हुआ कलेजे का घाव हरा हो गया। शेरसिंह रो पड़ा, कुमार की हिचकी बंध गई।

आँसुओं की धार के बीच शेरसिंह ने घटनाओं का क्रम बांधते हुये कहा—"कुमार तुम उस पिता की सन्तान हो जिसने बड़ी से बड़ी शक्ति के सामने अपना सर ऊंचा रक्खा। मेरी प्रबल इच्छा यही रही है कि एक दिन स्वदेश को मैं अन्यायियों के पंजे से छुड़ाने का प्रयत्न करूं या तो सफल हो जाऊं या वीर गति पाऊँ। पर......मेरी इच्छा तुम्हारे ऊपर निर्भर है। इसी आशा ने मुझे अब तक जीवित रक्खा है।"

कुमार ने आँसू पोंछ डाले। आँखें उबल आईं, भवें तन गईं, होठ कांपने लगे। उसने शेरसिंह का हाथ पकड़ कर कहा—"तुमने यह बातें कह कर भूल नहीं की। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से स्वदेश को मुक्त करने के लिये सर्वस्व त्याग दूंगा।"

शेरसिंह का चेहरा गर्व और उत्साह से खिल उठा। यही दो वाक्य सुनने के लिये उसने अपने स्वामी का साथ नहीं दिया था। उसने एक आह भर कर कहा—"अब मैं समझ गया कि मेरा शेष जीवन सार्थक होगा।"

(ब)

रात के आठ बजे दो व्यक्ति अजीतगढ़ की गलियों में घूमते हुए एक मकान के द्वार पर पहुँचे। द्वार पर पहुँच कर उनमें से एक ने

दरवाजे पर धक्का मारा।

किसी ने कहा कौन है ?"उसने कहा खोलो।' कुछ क्षण पश्चात एक युवक ने किवाड़ खोल कर पूछा—"कहिए! क्या काम है?"

उस आदमी ने कहा—"फतेहसिंह हैं ?"

युवक—"हैं तो सही! कहिये पर—क्या काम है ?"

उस आदमी ने कहा—"कह दीजिये कि उनका एक मित्र उनसे मिलना चाहता है?"

युवक भीतर चला गया और थोड़ी देर में आकर बोला—"चलिये! भीतर चलिये ?"

दोनों व्यक्ति भीतर चले गये।

एक दालान में एक बुड्ढा बलवान पुरुष चारपाई पर बैठा हूक्का पी रहा था। सामने एक चारपाई पड़ी थी। बुड्ढे ने हुक्के की गुड़-गुड़ी से धुंआ निकालते हुए कहा—"बैठिये! क्या काम है ?"

आगन्तुकों में एक वृद्ध सा था जिसके मुंह का अधिकांश भाग सफेद दाड़ी से ढका था। उसने चारों ओर देखा! कोई नहीं था। उसने फतेहसिंह से कहा—"क्या शेरसिंह को भूल गए?" हरेक शब्द में करुणा और वेदना थी। यह कहते हीं उसने नकली दाढ़ी निकाल दी।

फतेहसिंह उठ कर शेरसिंह के गले से लिपट गया।

दोनों मित्र कुछ क्षण तक लिपटे रहे, रोमांच हो आया। आंसू की धारा बह निकली। फतेहसिंह ने शेरसिंह को अपनी चारपाई पर बैठा कर कहा—"ओफ ग्यारह वर्ष के बाद दर्शन हुए। मैं तो तुम्हें....।"

शेरसिंह—'क्या करूं भाई। प्राण बचाये कोने में पड़ा हूं। तब से मरा सा ही हूं।"

फतेहसिंह ने ठण्डी सांस खींच कर कहा—

"महाराज के समय कीं बातें अब तो स्वप्नवत् हो गईं। सच है मरने के बाद ही किसी का असली मूल्य मालूम होता है।"

"क्यों क्या हुआ ?" शेरसिंह ने पूछा। '-हुआ क्या ? प्रजा की नाक में दम है। नित नये अत्याचार हो रहे हैं। सुख से बैठ कर रोटी खाना भूतकाल की बात हो गई है। महाराज शिवराज सिंह का अजीतगढ़ स्वर्ग से नरक हो गया है।"

शेरसिंह—'-पर क्या अत्याचार देखकर भी आपका ध्यान जन्म-भूमि को अत्याचारियों के पंजे से छुड़ाने की ओर नहीं जाता।"

फ़तेहसिंह की भवें तन गईं। उसने कहा—"ध्यान !! इसी चिंता मे घुला जा रहा हूँ। मेरे अधिकार में हजार पांच सौ आदमी हैं पर क्या करूं, कोई अगुआ तो नहीं होता। कोई ऐसा तो आजाय जिसके भरोसे काम करूं।"

शेरसिंह ने एक क्षण सोच कर कहा—"और अगर मिल जाये।"

फतेहसिंह—"तो फिर अपने दो ढाई सौ आदमियों को ही ले कर जान पर खेल कर बता दूं।"

शेरसिंह ने कुमार की ओर इशारा करके कहा——"तो सरदार यह है हमारे स्वामी का अन्तिम चिन्ह—अजीतगढ़ का उत्तराधिकारी कुमार रत्नसिंह—"

फतेहसिंह गदगद हो उठा। वह कुमार के पैरों पर गिरना ही चाहता था कि कुमार ने उन्हें पकड़ कर प्रेम से अपने को उनकी बांहों में डाल दिया। दोनों रो पड़े और खूब रोये। शेरसिंह भी रो पड़ा।

फतेहसिंह ने कहा—"आज मेरे शरीर में बल आ गया है। या तो अपने देश को मुक्त करेंगे या लड़ भिड़कर अपने प्राण देंगे।"

इसके बाद तीनों में बड़ी देर तक परामर्श होता रहा।

(स)

रात के ग्यारह बजे अजीतगढ़ से दो कोस की दूरी पर एक पहाड़ की बड़ी खोह में कुमार सहित फतेहसिंह, शेरसिंह तथा अन्य दस बारह

हथियारबन्द आदमी बैठे हैं। खोह के अन्दर मशालों की रोशनी हो रही है। खोह के द्वार पर चार हथियार बन्द जवान खड़े हैं। थोड़ी देर में अजीतगढ़ की ओर से आदमी आना आरंभ हुए। चार चार छः छः आदमियों की टोली साथ साथ आती थी। पहरे वाले उनसे कोई शब्द पूछकर उन्हें भीतर जाने की आज्ञा देते थे। इसी प्रकार दो तीन बजे तक ढाई तीन सहस्त्र आदमी जमा हो गए। तत्पश्चात फतेहसिंह ने उठ कर उच्चस्वर में कहा—'भाइयो. तुम सब वीर क्षत्री हो, तुम्हारे शरीर में क्षत्रियों का गर्म खून बह रहा है। क्या तुम अब भी अत्याचार सहने के लिए तय्यार हो? क्या तुम्हें यह बात पसन्द है कि, पड़ौस का एक छोटा सा सरदार अजीतगढ़ में तुम पर शासन करे और हर समय तुम्हारा रक्त चूसे। तुम्हारी बहू बेटियों को ताके। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी मातृ-भूमि पर दूसरों का अधिकार रहे?"

सबने एक स्वर होकर कहा—"कदापि नहीं। हमें मर जाना स्वीकार है, पर यह स्वीकार नहीं।"

फतेहसिंह-"यदि यह बात है तो उसके पंजे से अपने देश को छुड़ाने का आज प्रण कर लो। मातृ-भूमि की लाज तुम्हारे ही हाथ है।"

उनमें से कुछ लोगों ने कहा—"हम प्रण तो सब कुछ कर लें, पर किसके भरोसे? हमारा सरदार कहाँ है? अजीतगढ़ के सिंहासन पर किसे बिठाओगे?"

तब फतेहसिंह ने कुमार को आगे करके कहा—"अपने सरदार को देखो। अजीतगढ़ के सिंहासन के उत्तराधिकारी को देखो। महाराज के पुत्र युवराज रत्नसिंह को देखो!"

छः सहस्त्र आँखें एकदम से कुमार के ऊपर पड़ीं। कुमार तन कर खड़ा हो गया। उसके मुख पर एक अपूर्व प्रतिभा आ गई। लोगों पर उस प्रतिभा का प्रभाव पड़ा। सबने देखा कि उनके सामने वास्तव में कोई राजा खड़ा हैं। लोगों के हृदय में उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई।

सबका हृदय उसकी ओर आकर्षित हुआ। सबने एक स्वर से चिल्ला कर कहा—"युवराज चिरंजीव, युवराज की जय हो, हम युवराज के लिए प्राण देने को तय्यार हैं।"

फतेहसिंह ने अपनी तलवार उठा कर कहा-"आओ,हम सब प्रतिज्ञा करें कि मरते दम तक युवराज का साथ देंगे।"

इतना कह कर सभों ने अपनी अपनी तलवारें चूम लीं।

अभी तक कुमार चुप खड़ा था। अब उसने उच्च स्वर से कहा-"भाइयो, सोते हुए शत्रु पर आक्रमण करना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है। हमें रात भर ठहर कर प्रातःकाल आक्रमण करना चाहिए।"

सबेरा होते ही घमासान युद्ध छिड़ गया। युवराज रत्नसिंह के योद्धा अपने युवराज के प्रेम में पागल हो रहे थे। अतएव वे जान पर खेल कर लड़े। ऐसी दशा में उनके सामने कौन टिक सकता था? कुछ घन्टों में युवराज की विजय होगई। अधिकांश शत्रु सेना रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुई जो शेष रहे वे कैद कर लिये गये।

युध्द समाप्त होने पर युवराज ने शेरसिंह को न पाया। उसने धबरा कर पूछा-शेरसिंह कहां है? फतेहसिंह ने कहा, मैंने उन्हें किले के सरदार को रोकते देखा था उसके पश्चात मुझे वह नहीं दिखाई पड़े'।

इसी समय कुछ आदमी शेरसिंह को उठाये हुए लाये। शेरसिंह घावों के कारण मृतप्राय हो रहा था।

युवराज ने व्याकुल होकर शेरसिंह को अपनी गोद में लिटा लिया और शेरसिंह के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा 'काका यह क्या हुआ?'

शेरसिंह ने धीरे धीरे आँखें खोल कर युवराज को देखा और किंचित मुस्कराकर कहा-"मातृ भूमि की विजय।"

इतना कहकर शेरसिंह ने सदैव के लिए आँखें बन्द कर लीं।

विषमता

रात के आठ बजे थे। शंकरलाल के कमरे में उनके तीन मित्र बैठे थे। इनके नाम रामसनेही, दुर्गाप्रसाद तथा त्रिवेणीप्रसाद थे। इन सब की बयस २३ से लेकर २५, २६ वर्ष की थी। शंकरलाल एक श्री-सम्पन्न युवक हैं। इनके ये मित्र नित्य संध्या समय इनके यहाँ आकर जमा होते हैं और ताश, केरम, शतरंज इत्यादि से मनोरंजन करते हैं।

शंकरलाल जम्हुवाई लेकर बोला, "आज बनवारी नहीं आया।"

"हां, आज न जाने कहाँ रह गया।" दुर्गाप्रसाद ने कहा, "किसी काम में फंस गया होगा, अन्यथा वह रुकने वाला आदमी नहीं। रस्सियाँ तुड़ाकर आता है।" रामसनेही बोला।

"यार खाली क्या बैठे हो। आओ ब्रिज ही उड़े।" त्रिवेणी ने कहा।

"भई मैं इस समय ब्रिज के मूड में नहीं हूं।" शंकरलाल ने कहा।

"तो जाने दो।" दुर्गाप्रसाद ने कहा।

शंकरलाल बोला—"आज कुछ तबियत न जाने कैसी है। किसी

बात में लगती ही नहीं।"

इसी स   रेडियो से आवाज़ आई--"यह दिल्ली है। अभी आप—।"

शंकरलाल ने हाथ बढ़ाकर स्विच बन्द कर दिया। स्विच बन्द करके बोला—खामखाह् कान खाये जा रहा है।"

"अब रेडियो में आनन्द नहीं आता। गायकों और गायिकाओं की एक निश्चित संख्या है—लौट-फेर के वे ही आते रहते हैं।" दुर्गाप्रसाद बोला। "और लायेंगे कहाँ से।" रामसनेही बोला। इसी समय नौकर ने एक परचा लाकर दिया।

शङ्करलाल ने उससे पूछा-"कहाँ से लाया है?"

"बाबू बनवारीलाल का आदमी लाया है।" बनवारीलाल का नाम सुनकर सब के कान खड़े हो गये। शङ्करलाल ने परचा पढ़ा। पढ़कर बोला—"बनवारी ने हम सबको अपने घर पर बुलाया है।"

"क्यों?" दुर्गाप्रसाद ने पूछा।

"यह तो कुछ लिखा नहीं। केवल यह लिखा है कि परचा देखते ही सब लोग तुरन्त चले आओ।" यह कहकर शङ्करलाल ने परचा दुर्गाप्रसाद को दे दिया।

दुर्गाप्रसाद के सहित तीनों व्यक्तियों ने परचा पढ़ा। परचा पढ़ कर दुर्गाप्रसाद शङ्करलाल से बोला—"क्या राय है?"

"राय क्या! जब बुलाया है तो चलना चाहिए।" यह कह कर शङ्करलाल नौकर से बोला—"उनके आदमी से कह दो—अच्छा! और बंशी से कहो कार ले आये।" आदमी चला गया। शंकरलाल बोला—"तब तक मैं कपड़े पहन लूँ।"

दस मिनट में शङ्करलाल कपड़े पहन कर आगया! उधर कार भी आगई। चारों व्यक्ति बाहर निकले। शंकरलाल बंशी ड्राइवर से बोला—"तुम बैठो, मैं खुद ले जाऊँगा।"

यह कहकर शंकरलाल ड्राइवर की सीट पर बैठ गया। उसके बगल में दुर्गाप्रसाद तथा पीछे की सीट पर रामसनेही तथा त्रिवेणीप्रसाद बैठ गये। कार रवाना हुई।

दुर्गाप्रसाद ने पूछा—"भला क्यों बुलाया है ?" "क्या जाने! कोई खास बात होगी।"

"अगर खास बात न हुई और बेकार में परेशान किया होगा तो मैं बिना चपतियाये छोड़ूँगा नहीं।"

शङ्करलाल हँस कर बोला—"कोई न कोई बात अवश्य होगी। अकारण ही कभी न बुलाया होगा।"

इसी प्रकार बातें करते हुए पन्द्रह मिनिट में ये लोग बनवारी के मकान पर पहुँच गये। कार से उतर कर चारों व्यक्ति बनवारी के कमरे में पहुँचे। बनवारी इन लोगों की प्रतीक्षा ही कर रहा था। इन सबको देखते ही बोला—"आओ भई!"

चारों व्यक्ति बैठ गये। दुर्गाप्रसाद ने कहा—"कहिये, क्या हुक्म है?"

"कुछ नहीं! ऐसे ही बुला लिया।" बनवारी बोला। "क्या? ठीक ठीक बताओ वरना आज पिट जाओगे। मैं प्रतिज्ञा करके चला हूँ।" दुर्गाप्रसाद ने कहा। बनवारी ने मुस्कराकर पूछा—"क्या प्रतिज्ञा की है?" "यही कि यदि बिना किसी खास कारण के बुलाया होगा तो बिना पीटे नहीं छोड़ूँगा।"

"अच्छा मान लो कोई खास कारण नहीं है।"

"मेरा ऐसा मानना तुम्हारे लिए खतरनाक होगा यह याद रखना।"

शङ्करलाल बोल उठा—"अच्छा दिल्लगी हो चुकी अब ठीक ठीक बताओ, क्या बात है।"

"अच्छा कोई बढ़िया बात बताई तो क्या दिलवाओगे?"

"हलवाई की दुकान पर बिठाकर पूड़ियाँ खिलवा देंगे।" त्रिवेणी प्रसाद बोल उठा।

त्रिवेणी के तीनों साथी हँस पड़े। बनवारीलाल बोला—"अपनी हैसियत के अनुसार ठीक कहता है। बेचारे की इतनी ही हैसियत है।"

शङ्करलाल बोले–"ओफ–ओह! दुनिया भर की बातें करोगे परन्तु मतलब की बात न कहोगे।"

"अच्छा इधर कान लाओ!" बनवारी बोला। शङ्करलाल बनवारी के मुंह के पास अपना कान ले गये। बनवारी ने कुछ कहा जिसे सुनकर शङ्करलाल का चेहरा खिल उठा और वह बोला—"अच्छा! मजाक तो नहीं करते हो?"

क्या बात करते हो! मजाक का क्या काम।"

दुर्गाप्रसाद बोला—"यार तुम लोग चुपके-चुपके बातें कर रहे हो हम लोग बेवक़ूफ बने बैठे हैं।"

"कोई आज नये थोड़े ही हो हमेशा के बेवक़ूफ हो।"

"अब तुम निश्चय मार खाओगे।"

शङ्करलाल बोला—"मरे क्यों जाते हो! मिस रोज के यहां चलना है।"

यह सुनते ही तीनों व्यक्ति प्रसन्न होकर बोले—"अच्छा!" दुर्गाप्रसाद बोला—"गुड ब्वाय! मैं तो पहले ही जानता था कि बनवारी बिना कोई खास बात हुए बुलाने वाला नहीं है।"

बनवारी बोला—"अच्छा तो अब देर मत करो, चलो"

(२)

शंकरलाल तथा उनके चारों मित्रों का दल एक नये बिगड़े युवकों का दल था। इनमें प्रायः सबके सब धनी परिवार के थे। शंकरलाल के पिता की मृत्यु हो चुकी थी और वे काफी सम्पत्ति छोड़ गये थे। बनवारीलाल के भी पिता मर चुके थे। त्रिवेणी के पिता अपने व्यापार के काम में इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें पुत्र पर नियन्त्रण रखने का

अवकाश ही न था। अपने व्यापार के सम्बन्ध में उन्हें बहुधा विदेश में ही रहना पड़ता था, इस कारण त्रिवेणी को मनमानी करने का यथेष्ट अवसर मिलता था। दुर्गाप्रसाद के पिता बहुत वृद्ध थे। इस कारण वह अपने घर का स्वयं ही मालिक था। इनमें केवल रामसनेही ही ऐसा था जो न तो इन लोगों की भाँति धनी था और न स्वतन्त्र तथापि वह इन लोगों के साथ घूमने-फिरने का समय निकाल लेता था और मित्रता के कारण, उसे इन लोगों के साथ रहने में अपनी जेब से कुछ खर्च भी न करना पड़ता था। वैसे तो ये लोग "सब गुन पूरे" थे, परन्तु इधर कुछ दिनों से एक चरित्रहीन ऐंग्लो-इण्डियन युवती मिस रोज के चक्कर में फँस गये थे। वह इन लोगों को खूब दुह रही थी। केवल रामसनेही ही उसके फन्दे से बचा हुआ था। इसके दो कारण थे। एक तो उसे मिस रोज के प्रति कोई विशेष अनुराग नहीं था दूसरे उसके पास इतना पैसा भी नहीं था कि वह मिस रोज को प्रसन्न कर सकता। इन सब बातों के अतिरिक्त उसकी प्रकृति में सज्जनता तथा सच्चरित्रता भी थी। परन्तु इन लोगों की संगति के कारण उसकी प्रकृति मलावृत्त दर्पण की भाँति मलिन हो गई थी।

आज मिस रोज की दावत थी। शहर के बाहर शंकरलाल का एक बाग था जिसमें एक छोटा सा खूबसूरत बँगला बना हुआ था। इसी बाग में दावत का आयोजन किया गया था। शङ्करलाल संध्या से ही वहाँ उपस्थित था। बंगले के छोटे से हाल में एक बड़ी गोल मेज को शंकरलाल सजा रहे थे। माली गुलदानों में फूल लगा रहा था। शंकरलाल निरीक्षण कर रहे थे। इसी समय शंकरलाल का ड्राइवर बंशी साइकिल पर आया। उसने आकर कहा—"हुजूर, ह्विस्की के तो दाम बहुत बढ़ गये हैं।"

"कितने बढ़ गये।"

"दो बोतल के पचास रुपये माँगते हैं वह भी कहते थे कि बाबू

जी कीखातिर, दूसरे से साठ लेते।"

शंकरलाल के पास ही रामसनेही खड़ा था। वह बोला—"जाने दो बहुत मँहगी है।"

"जाने क्यों दो। बिना शराब के लुत्फ़ क्या खाक आयेगा। लाओ बंशी ले आओ।"

"कोई और मँगा लो सस्ती सी।"

"सस्ती तो यहीं की बनी हुई मिलेगी-विलायती न होगी।" बंशी ने कहा।

"तुम ले आओ जी, देशी शराब किस काम की।" शंकरलाल ने कहा।

बंशी चला गया।

"पचास रुपये की खाली शराब हो गई!"

"तो क्या हुआ! आप इतने ही में चकरा गये।"

"चकराने की बात ही है। पचास रुपये की दो बोतल! कौन पीता होगा।"

शंकरलाल हंस पड़े। बोले—"क्या बात करते हो?"

"मैं ऐसे आदमियों को जानता हूँ जो डेढ़-दो हजार रुपये महीने की केवल शराब खर्च करते हैं।"

रामसनेही विस्मित होकर बोला—"क्या ठीक है।"

ये लोग दर्शनीय हैं। लेकिन क्या आप की मिस रोज भी नित्य विलायती ही पीती हैं। डेढ़ सौ रुपये मासिक तो वह वेतन पाती हैं विलायती कहाँ से पीती होंगी।'

"ऐसे ही पीती हैं जैसे आज पियेंगी, अपने पल्ले से तो देशी ही पीती होंगी।"

"तब फिर उसके लिए इतनी कीमती शराब मँगाने की क्या आवश्यकता थी।"

"अहमक हो ! हम अपनी हैसियत के अनुसार काम कर रहे हैं, उसकी हैसियत के अनुसार थोड़े ही कर रहे हैं।"

"यह बात है। वाकई आप की हैसियत से तो ठीक ही है।"

"अब तुम समझ लो कि इस दावत का खर्चा कोई सौ रुपये से ऊपर बैठेगा।"

"कुल ६ आदमियों में।"

"जी !"

"हाँ भाई सब पैसे की माया है।"

"और यह बिलकुल मामूली खर्च है।"

"बस रहने दीजिये। मुझे ये बातें सुन कर क्रोध आता है।"

"क्रोध ! यह क्यों ?

"इस फुजूल खर्ची पर !"

"यह फुजूलखर्ची नहीं है चोंगानन्द ! यह है ऐश ! इसी को कहते हैं जीवन का आनन्द ! वरना पेट तो सभी भर लेते हैं।"

"आनन्द की व्याख्या आपने अच्छी की।"

इसी समय बनवारीलाल, दुर्गाप्रसाद तथा त्रिवेणी भी आगये। उन्होंने पूछा—"क्या बहस चल रही है।"

शंकरलाल हँसकर बोले—"रामसनेही को यह सब घोर फुजूलखर्ची दिखाई पड़ रही है।"

"तुम भी किसके मुंह लगे हो। हां क्या क्या इन्तजाम है।" बनवारी ने कहा।

(३)

ठीक आठ बजे मिस रोज आगईं। उसके आते ही ढलने लगी। रामसनेही के सामने भी ह्विस्की का ग्लास रक्खा गया। रामसनेही बोला—

"बस मुझे तो क्षमा कीजिये।"

5068

"यह क्यों, क्या तोबा कर ली !"

"हाँ ! और आज ही तोबा की है।"

"गधेपन की बातें तो करो नहीं। चुपचाप भले आदमी की तरह पीना शुरू कर दो।"

"भई मुझे क्षमा करो।"

मिस रोज बोलीं—"क्यों, आप तो पीता था।"

"हाँ। लेकिन आज से छोड़ दिया।"

"बट ह्वाई ?" (परन्तु क्यों)

"कोई खास बात नहीं—तबीयत नहीं चाहती।"

"सिली ब्वाय !" रोज ने हँसकर कहा।

"जाने दो ! नहीं पीता तो न सही ! कोई जबरदस्ती थोड़ी ही है।"

"अच्छा लेमोनेड-सोडा तो पियोगे या उससे भी तोबा कर ली।"

"हाँ वह पियूंगा।"

"तो लो झख मारो बैठ के।" शंकरलाल ने लेमोनेड की बोतल उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा। नौ बजे तक खाना-पीना होता रहा। इसके पश्चात हारमोनियम बजने लगा। शंकरलाल हारमोनियम बजाने लगा और दुर्गाप्रसाद ने गाना आरम्भ किया। रामसनेही बैठा सोच रहा था—"एक वे लोग हैं जिन्हें पेट भर भोजन भी नहीं मिलता। और एक ये हैं कि जरा देर के मनोरंजन के लिए सैकड़ों खर्च कर देते हैं। कैसी विकट विषमता है। रामसनेही कुछ देर बैठा इसी प्रकार की बातें सोचता रहा। इसके पश्चात एकदम उठकर बोला—"अच्छा मैं तो अब चलता हूँ। "दस बज गया है।"

"अरे बैठो भी—ऐसी क्या जल्दी पड़ी है ?" शंकरलाल ने कहा।

"जाने दो—आज ज्ञानबाई का जोर है। पी हमने है और चढ़ी इसे है।" दुर्गाप्रसाद बोला।

इसी समय बाग का माली आया। शंकरलाल उसे देखकर कर्कश स्वर में बोला—"यहाँ क्यों आये ?"

"हुजूर! शाम को एक औरत बाग में आगई थी।"

"कौन औरत ?" शंकरलाल ने पूछा।

"पता नहीं। कोई गरीब मालूम होती है। वह एक पेड़ के नीचे लेट रही थी। मैंने उससे चले जाने को कहा तो वह बोली "अभी चली जाऊँगी।"

फिर मैं इधर फूल लेकर चला आया और यहाँ काम करता रहा। अब जो उधर गया तो देखा वह औरत पड़ी कराह रही है।"

"तो हम क्या करें। उसे बाहर कर दो।"

हुजूर मैंने उससे कहा, "पर वह कुछ जवाब नहीं देती पड़ी कराह रही है!"

"अरे उसे किसी तरह निकालो—रात में मर-वर गई तो और परेशानी होगी।" दुर्गाप्रसाद बोला।

"वह तो जाती नहीं।"

"घसीट कर बाहर कर दो—जायेगी कैसे नहीं।" शंकरलाल ने कहा।

रामसनेही बोल उठा—"चलो मैं चलता हूँ।"

रामसनेही चला गया। कुछ क्षण बाद लौट कर बोला—"भई उसकी हालत खराब है। उसे अस्पताल पहुँचवा दो।"

"कैसे पहुँचवा दें।"

-'तुम्हारी—कार तो है-उसमें भेज दो।'

"आप आदमी हैं या पजामा ? मेरी कार ऐसे लोगों के लिए है!"

'तो एक तांगा मंगवा लो।"

"यह अच्छा झंझट लगा। तांगा लाये कौन ?"

"तांगा-इक्का यहाँ कहाँ मिलेगा-शहर जाना पड़ेगा।"

"मुझे बन्शी पहुँचाने जा रहा है, उधर से लेता आयेगा।"

"और फिर उसे अस्पताल कौन ले जायगा।"

"बन्शी को साथ कर देना।"

"अच्छा झगड़ा लगा। इस ससुरी को यहीं मरने आना था।"

रामसनेही को क्रोध आगया। वह बोला—"आप लोग आदमी हैं या हैवान! एक स्त्री के लिए तो आप क्षण-मात्र में सैकड़ों खर्च कर देते हैं और एक गरीब के लिए जो मर रही है और जिसे सहायता की बेहद आवश्यकता है, उसे अस्पताल तक पहुँचाने में आप उदासीन हैं। बड़ी लज्जा की बात है।"

शंकरलाल बोल उठा—"ओफ-ओह! आज तो आप उपदेशक बने हुए हैं। क्या ठीक है। आप बड़े इन्सान हैं तो आप ही पहुंचा दीजिए।"

"खैर! वह तो मैं कर ही दूँगा, परन्तु यह याद रखिए कि आप ही जैसे लोग गरीबों और धनी लोगों के मध्य समाजवाद और साम्य-वाद की खाई खोद रहे हैं। आप ही जैसे लोग गरीबों के हृदय में धनिकों के प्रति घृणा तथा क्रोध की ज्वाला भड़का रहे हैं। जितना रुपया दस-बीस गरीबों का महीने भर तक पेट भर सकता है उतना रुपया आप थोड़ी सी देर के दिल बहलाव के लिए खर्च कर के भी एक मरती हुई गरीब औरत के लिए जरा सा कष्ट तक नहीं उठा सकते। अफ़सोस! इससे बढ़ कर हृदयहीनता और पशुता और क्या होगी।"

यह कह कर रामसनेही चला गया।

शंकरलाल बोला—"यह पागल क्या बक गया?"

"बौड़म है। ऐसों को तो पास भी न बैठने देना चाहिए।"

रामसनेही ने उस स्त्री को अस्पताल पहुँचा दिया और उसी दिन शंकरलाल एण्ड पार्टी का साथ सदैव के लिए त्याग दिया।

विधवा की होली

श्यामा की सास एक दरिद्र ब्राह्मणी है। उसका व्यवसाय केवल यह है कि किसी का कुछ काम करके, किसी की रोटी बना कर किसी की खुशामद करके, कहीं से दान-दक्षिणा लाकर अपना तथा अपनी विधवा पुत्र-बधू का पेट चलाती है। इन दो माँ-बेटी के अतिरिक्त इनके परिवार में और कोई भी नहीं। श्यामा का यह रूप यह सौन्दर्य, जिसे देख कर यही कहना पड़ता है कि यह रूप और यौवन तो राजमहलों की चहारदीवारी के भीतर रहने योग्य था। एक गन्दे और छोटे मकान में बन्द है। जो शरीर सदैव रेशम और मखमल में शोभायमान होने योग्य था वह शरीर जीर्ण-शीर्ण मलिन वस्त्रों से ढका रहता है। जो रूप और यौवन किसी पुरुष-सिंह के मनोरंजन की प्यारी चीज बनना चाहिए था, वही रूप यौवन इस समय व्यभिचारियों और लम्पटों की पाप-दृष्टि का लक्ष्य बन रहा है। श्यामा का दुर्भाग्य उसके रूप और सौन्दर्य का उपहास करता है, उसका मजाक उड़ाता है।

\+ + + +

श्यामा के पड़ोस में एक अन्य ब्राह्मण-परिवार रहता था। उस परिवार में एक लड़का था शीतलाप्रसाद, उसकी वयस २१ वर्ष के लगभग थी। यह परिवार रोटी कपड़े से खुश था। अतएव श्यामा को और उसकी माता को उससे कभी कभी कुछ सहायता मिल जाया करती थी। सहायता मिलने का एक बड़ा कारण यह था कि शीतला-प्रसाद श्यामा के घर आया जाया करता था। श्यामा को वह भाभी कहा करता था। श्यामा पर शीतलाप्रसाद की पाप-दृष्टि बहुत दिनों से थी। श्यामा पर उसकी पाप-वासना थी, बलिवेदी पर भेंट चढ़ाने की चेष्टा में था, पर अभी तक उसका अभीष्ट पूरा नही हुआ था। श्यामा का व्यवहार उसके साथ इतना पवित्र था कि उसका कभी इतना साहस नहीं हुआ कि वह पाप वासना को श्यामा पर किसी प्रकार प्रकट करे। वह सुअवसर की खोज में था। वह ऐसे समय की प्रतीक्षा में था जब कि श्यामा सरलता-पूर्वक उसका शिकार बन जावे, वह ऐसा मौका खोज रहा था जबकि, श्यामा चेष्टा करने पर भी उसके बाहु-पाश से न निकल सके।

शीतलाप्रसाद श्यामा की माता से बोला -"चाची,होली आरही है।" श्यामा की माता ने कहा-"हाँ, बेटा आरही है,पर हम गरीबों को होली-दीवाली से क्या काम। हमारे लिए तो सब दिन बराबर हैं। हम तो अपने जीवन के दिन काट रही हैं। जितने दिनों दुख भोगना बदा है सो भोगेंगी। यदि आज मेरा सुन्दर (सुन्दरलाल श्यामा का पति) जीता होता तो हमें भी होली के आने का चाव होता,खुशी होती। अब तो हमारे लिए होली न दीवाली !

इतना कहते हुए वृद्धा ने अपने नेत्र आंचल से पोंछे, उधर एक तरुणी-कान्ता का हाथ बर्तन मलते मलते कुछ क्षणों के लिए रुक गया, उसने भी उस हाथ की कलाई से आँखें मलीं। एक मर्म-भेदी नीरव आह छोड़ी।

शीतलाप्रसाद बोला-"अरे चाची, जो कुछ होना था हो गया, अब उसको याद करके कुढ़ने से क्या लाभ ?"

वृद्धा—हाँ, बेटा लाभ तो कोई नहीं, पर घाव में तो टीस उठती ही है। वह हानि—लाभ थोड़ा देखती है।"

शीतलाप्रसाद—"तुम अब मुझे ही अपना पुत्र समझो, तुम्हें जिस बात का कष्ट हो मुझसे कहो।

वृद्धा—"बेटा, भगवान तुम्हें चिरंजीव रक्खे। तुम्हारा सबका तो अब भरोसा ही है।"

शीतलाप्रसाद-"तो जिस बात की आवश्यकता हो मुझ से कहना।"

वृद्धा—"बेटा, और तो कुछ नहीं, श्यामा के लिए एक धोती हो जाती तो अच्छा था। लाख कुछ हो जब तक देह है तब तक तो लोकाचार करना ही पड़ेगा। होली पर पहनने के लिए लड़की के पास एक भी धोती नहीं है।"

शीतलाप्रसाद मन ही मन प्रसन्न होकर बोला—"बस चाची, इतनी ही सी बात! आज ही लो-एक जोड़ा धोती अभी लाता हूँ। यह कह कर शीतलाप्रसाद चला गया।

उसी दिन शाम को शीतलाप्रसाद ने धोती का एक जोड़ा लाकर वृद्धा को दिया और कहा—"लो यह धोती पूरा जोड़ा ले आया, और कोई चीज चाहिए तो कह देना।"

वृद्धा—"बस बेटा, भगवान तुझे बनाये रक्खे हमारी गरीबों की इतनी सहायता करते हो।"

शीतलाप्रसाद चल दिया।। चलते समय उसने श्यामा की ओर एक कटाक्ष-बाण छोड़ कर कहा—"भाभी इस बार तुम से होली खेलूँगा।"

श्यामा ने उसकी दृष्टि का मर्म समझ लिया। अबला का हृदय काँप गया।

* * *

होली आगई।

शीतलाप्रसाद बड़े प्रसन्न हैं कि श्यामा पर विजय प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर मिला है।

वृद्धा कहीं जीविका की खोज में गई थी। श्यामा घर में अकेलीथी। शीतलाप्रसाद तो ऐसे अवसर की खोज ही में थे जब कि श्यामा अकेली हो। अतएव वह पिचकारी और एक पुड़िया सुगन्धित गुलाल की लेकर श्यामा के घर पहुँचा। श्यामा उसे देख कर घबरा गई। शीतला-प्रसाद ने मुस्कराकर कहा—"भाभी आज तो तुम्हें मेरे साथ होली खेलनी पड़ेगी।"

श्यामा ने कहा—"मैं अब क्या होली खेलूँ, होली खेलना मुझे शोभा नहीं देता।"

शीतलाप्रसाद "मेरे साथ होली खेलना तुम्हें शोभा देगा। यह कह कर शीतलाप्रसाद आगे बढ़ा। उसकी मुट्ठी में गुलाल था—वह मुट्ठी उसने श्यामा के गालों की ओर बढ़ाई।

श्यामा ने हाथ से रोक कर कहा—"जो तुम्हारी यही इच्छा है तो थोड़ा सा गुलाल मुझे दे दो मैं तुम्हारी ओर से मल लूंगी।"

शीतलाप्रसाद—मुस्कराकर बोला—"वाह, यह कैसे हो सकता है—मैंअपने हाथ से मलूंगा।"

श्यामा—"शीतलाप्रसाद, क्यों मुझे तङ्ग करते हो?"

शीतलाप्रसाद—"यदि थोड़ी देर के लिए तंग ही होलोगी तो क्या होगा, मैं तो तुम्हारे लिए अपने प्राण तक देने को फिरता हूँ।"

यह कह कर शीतलाप्रसाद ने श्यामा को अपने बाहुपाश में लेने के लिए हाथ बढ़ाया। श्यामा ने पीछे हट कर कहा—"मान जाओ, मेरे साथ होली मत खेलो। मेरे साथ होली खेलना सहज नहीं।"

शीतलाप्रसाद—"यह तो मुझे मालूम है। तुम्हारे साथहोली खेलना

मेरे जैसे भाग्यवान को ही नसीब हो सकता है।"

श्यामा—"होली खेलना है तो दूर से रङ्ग छोड़ दो, गुलाल छोड़ दो, मेरे हाथ क्यों लगाते हो।"

शीतलाप्रसाद—"दूर से रङ्ग छोड़ दूँ! मैं कोई अछूत हूँ क्या!"

श्यामा—"यह मैं नहीं कहती, पर मेरे हाथ मत लगाओ"

शीतलाप्रसाद ने इस बार श्यामा की गर्दन में हाथ डाल ही दिया, श्यामा एक हल्की चीत्कार के साथ अलग होगई।

शीतलाप्रसाद "बोला—तो तुम सीधी तरह होली न खेलोगी।"

श्यामा कुछ सोच कर बोली—तो मैं भी तुम्हारे गुलाल मलूँगी।"

शीतलाप्रसाद प्रसन्न मुख होकर बोला-"हाँ, हाँ, शौक से। एक बार नहीं दस बार, सौ बार।"

श्यामा—"अच्छा ठहरो मैं गुलाल ले आऊं।"

शीतलाप्रसाद हँस कर बोला—तो यह कहो, तुमने भी होली खेलने की तैयारी कर रक्खी है, मुझे व्यर्थ ही गीदड़—भपकियां दिखाती थीं। पर मैं ऐसा बच्चा नहीं हूँ जो उनसे डर जाता।"

श्यामा कोठरी के भीतर घुस गई। कुछ क्षणों के पश्चात अपना दाहिना हाथ धोती के आंचल में छिपाये हुए निकली।

शीतला प्रसाद ने कहा—"अब आज्ञा है।"

श्यामा ने कहा—"शीतलाप्रसाद अब भी मान जाओ तो अच्छा है, मेरे साथ होली खेलना सहज नहीं।"

शीतलाप्रसाद—"अब बहुत नखरे तो बघारो नहीं। मैं सब समझता हूँ।"

श्यामा—"समझते होते तो इतनी हठ न करते।"

शीतला प्रसाद यह कहते हुए आगे बढ़ा—"मेरी हठ तो आज तुम्हें रखनी ही पड़ेगी उसने श्यामा की गर्दन में बांह डाल दी और उसके वक्ष-स्थल से अपना वक्ष-स्थल मिलाने की चेष्टा करते हुए गुलाल

वाला हाथ उसके मुख की ओर बढ़ाया हठात् श्यामा का दाहिना हाथ ऊपर उठकर शीतलाप्रसाद के वक्ष-स्थल पर गिरा। शीतलाप्रसाद एक चीत्कार मार कर अलग हो गया। उसका दाहिना हाथ उसकी छाती पर रक्खा हुआ था। हाथ के नीचे उसका वस्त्र लाल रंग गया था, क्रमशः वह लाली नीचे फैल रही थी

शीतलाप्रसाद ने कष्ट के साथ कहा'श्यामा, यह तुमने क्या किया ?'

श्यामा—"यह मेरी होली है, हिन्दू नारियां पापियों के साथ इसी प्रकार होली खेलती हैं। अब समझे? देखो मेरा रंग कितना गहरा है, तुम्हारे श्वेत कपड़े पर वह कितना भला मालूम होता है। हाँ, अब तुम अपनी पिचकारी मुझ पर छोड़ो, गुलाल मलो।"

श्यामा का मोहन रूप इस समय साक्षात् चण्डी का रूप हो रहा था, उसका विकट हास्य हृदय में भय उत्पन्न करता था। शीतलाप्रसाद को ज्ञात हुआ कि मृत्यु उसके सम्मुख खड़ी बिकट हास्य करके उसे अपनी ओर बुला रही है। शीतलाप्रसाद आँखों पर हाथ रखके भाग खड़ा हुआ।

* * * *

शीतलाप्रसाद के घाव हल्का लगा था। शीतलाप्रसाद अच्छा हो गया। किसी को भी कुछ पता न लगा कि शीतलाप्रसाद के घाव लगने का असली कारण क्या था। शीतलाप्रसाद ने यह कह दिया था कि वह ठोकर खाकर गिर पड़ा, भूमि पर एक टूटी बोतल पड़ी थी वह उसकी छाती में लग गई।

स्वस्थ होने के कई दिन पश्चात् एक दिन शीतलाप्रसाद श्यामा के पास पहुँचा। श्यामा ने उसे देखते ही पूछा—"क्यों, क्या फिर होली खेलने की इच्छा है ?" शीतलाप्रसाद ने श्यामा के सामने घुटने टेक दिये और कहा—"भगिनी, तुम्हारे रंग ने मेरे हृदय की सारी कालिमा धो दी, मेरा हृदय शुद्ध हो गया। मैने सच्ची होली तुम्हारे साथ खेली।

ऐसी होली क्या अब कभी खेलने को मिलेगी ? तुम्हारे जैसा रंग कहां मिलेगा ? कलुषित आत्माओं के लिये ऐसे ही रंग की आवश्यकता है। उस रंग ने वस्त्र ही नहीं हृदय को भी रंग दिया।

श्यामा—"शीतलाप्रसाद, वह हिन्दू विधवा का रंग था। हिंदू विधवाएं उसी रंग से होली खेलती हैं।"

शीतलाप्रसाद ने अपना मस्तक श्यामा के चरणों पर रख दिया।

विजय
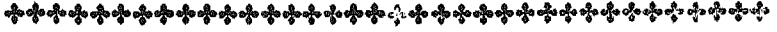
(१)

विजयदशमी की तैयारियाँ हो रहीं थीं। राज-कर्मचारी बहुत व्यस्त थे। राज-परिवार क्षत्री था अतएव राज्य में विजयदशमी का त्योहार सबसे बड़ा त्योहार माना जाता था और इस अवसर बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता था जिसमें कि राजा तथा प्रजा दोनों बड़े उत्साह तथा उल्लास के साथ भाग लेते थे। विजयदशमी वाले दिन कुछ भैंसों का वध किया जाता था, और वह इस प्रकार कि राज-परिवार तथा सरदारों के वीर युवक ही इन भैंसों का सिर काटते थे। जो व्यक्ति जितने ही कम वारों में सिर काटने में सफल होता था, वह उतना ही बलवान समझा जाता था। जो केवल एक बार में भैंसे का सिर काट डालता था, वह राजा की ओर से पुरस्कृत होता था।

राज-कार्यालय के विशाल भवन के एक भाग के सामने आठ-दस भैंसे एकत्र थे। एक उच्च राज-कर्मचारी उनका निरीक्षण कर रहा

था। निरीक्षण करने के पश्चात उसने भैंसों को ले जाने की आज्ञा दी और भवन के अन्दर अपने स्थान पर लौटकर उसने अपने साथ के आदमी से कहा—"इनमें राजकुमार के लिये कोई भैंसा अभी मुझे नहीं जँचा।"

साथ के आदमी ने पूछा—"आपका तात्पर्य क्या है? ये छोटे हैं या बड़े?"

कुछ आश्चर्य-पूर्ण दृष्टि से साथी की ओर देखकर राज-कर्मचारी ने कहा—"राजकुमारों के लिये और छोटा भैंसा!" उनका यह पहला प्रदर्शन होगा इसलिये जरा मजबूत और बड़ा जानवर होना चाहिए।"

"—हाँ, परन्तु इतना बड़ा भी नहीं जिसे राजकुमार एक ही बार में न काट सकें, क्योंकि राजकुमार का विफल होना कदाचित आप भी पसन्द न करेंगे।"

राज कर्मचारी ने व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया—"परन्तु यदि छोटा और कमजोर जानवर उन्होंने एक बार में काट भी दिया तो उससे उनका कुछ अधिक गौरव नहीं बढ़ेगा।"

—"यह भी आपका कहना ठीक है। इसीलिये मेरा निवेदन यह है कि मझोले दर्जे का जानवर हो, न बहुत बड़ा, न बहुत छोटा।"

—"कोई युक्ति ऐसी हो सकती है कि देखने में जानवर बड़ा न हो परन्तु उसकी गर्दन बड़े जानवर की तरह मजबूत और सख्त हो।"

"यह तो बहुत मामूली बात है, कोई गाड़ी का चला हुआ जानवर हो तो जो बात आप चाहते हैं वह हो जायगी। गाड़ी में चले हुए जानवर की गर्दन बहुत सख्त हो जाती है और जो गाड़ी में नहीं जोते जाते उनकी गर्दन मुलायम होती है देखने में चाहे वे बड़े हों।"

—"मेरा भी ऐसा ही खयाल है। तभी मैंने तुमसे पूछा।"

"दोनों बातें हो सकती हैं बड़ा जानवर गर्दन मुलायम और छोटा जानवर गर्दन सख्त। आप जैसा चाहें वैसा बता दें।"

—"मैं बड़े असमंजस में पड़ा हूँ। तुम अपने आदमी हो इससे बताता हूँ किसी दूसरे से इसका जिक्र मत करना। बड़ी महारानी बड़े राजकुमार की माता ने मुझसे यह कहलवाया है कि ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे उनका राजकुमार सफल हो जाय। छोटी महाराणी ने इच्छा प्रकट की है कि ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे कि बड़े राज-कुमार असफल हों और छोटा राजकुमार सफल हो जाय। अब मैं क्या करूँ यह समझ में नहीं आता।"

—"बड़ी महाराणी की इच्छा केवल अपने राजकुमार को सफल देखने की है। परन्तु, छोटी महाराणी की इच्छा केवल अपने पुत्र को सफल देखने की ही नहीं वरन बड़े राजकुमार को असफल देखने की भी है।"

"—हाँ!'

—"यह जरा सी कठिनाई है। मेरी समझ में आप दोनों की सफ-लता के लिये प्रयत्न करें। उत्तम और निरापद मार्ग यही है—आगे जैसी आपकी इच्छा।"

"मेरा भी यही विचार है। दोनों ही सफल हों यह अधिक अच्छा है। बड़ी महाराणी की भी इच्छा पूर्ण होगी और छोटी महाराणी की भी इतनी इच्छा कि उनका पुत्र सफल हो, पूर्ण हो जायगी। यही ठीक है। मेरे लिये दोनों बराबर हैं।"

—"आपका विचार बिलकुल ठीक है।"

—"तो ऐसे भैंसे होना चाहियें जो औसत दर्जे के हों लेकिन उनकी गर्दन सख्त न हो—मुलायम हो।"

—"मुलायम ही होगी और तरकीब से और अधिक मुलायम कर दी जायगी।"

—"वह कैसे?"

—"ऐसी चीजें हैं जिनके मालिश करने से गर्दन बहुत मुलायम हो

जाती हैं।"

—"तो बस ऐसा ही प्रबन्ध करो।"

(२)

राज व्यायाम-शाला से दो युवक जिनकी वयस लगभग बराबर ही थी, हँसते हुए निकले। इनमें एक बड़ा राजकुमार था और एक छोटा। बड़ा राजकुमार बड़ी महाराणी से था और छोटा छोटी से। दोनों की वयस में केवल छः मास का अन्तर था। बड़ा राजकुमार छोटे राजकुमार से केवल छः महीने बड़ा था। बड़े की वयस २३ वर्ष की थी। दोनों समान रूप से हृष्ट-पुष्ट तथा व्यायाम गठित शरीर के थे। उनके साथ एक यूरोपियन था। यह भी काफी बलवान तथा देखने में स्पेनिश पहलवान सा मालूम होता था, यह इन दोनों का व्यायाम-शिक्षक था। तीनों व्यक्ति यूरोपियन ढङ्ग के व्यायाम के समय के रेशमी कपड़े पहने हुये थे। दोनों राजकुमार पसीने में भीगे हुए थे और तौलियों से अपना बदन पोंछ रहे थे। इसी समय एक बेरा एक चाँदी की ट्रे (कश्ती) में तीन चाँदी के ग्लास रक्खे हुए लाया। एक-एक ग्लास तीनों ने लिया और धीरे-धीरे पीने लगे।

शिक्षक ने कहा—"मेरे खयाल से अब आप दोनों दशहरे के लिये तैयार हैं?"

—"मुझे तो अपने ऊपर पूरा भरोसा है कि मैं किसी भी भैंसे की गर्दन एक वार में काट सकता हूँ।" छोटे राजकुमार ने कहा।

"यदि आपको ऐसा भरोसा है तो आपके बड़े भाई को भी होना चाहिए।" यह कहकर शिक्षक ने बड़े राजकुमार की ओर देखा।

—"भरोसा तो मुझे भी है परन्तु मैं इस काम को अच्छा नहीं समझता। बल प्रदर्शन का यह ढंग मुझे पसन्द नहीं।"

—"आपने मेरे मन की बात कही। यह ढंग बड़ा हृदय-हीन पाश-

विक है।" शिक्षक ने कहा।

छोटा राजकुमार बोल उठा—"स्पेन के साँड़ों और मनुष्यों की लड़ाई जिसमें आदमी साँड़ को तलवार से मारता है क्या कम हृदय-हीन है ?"

—"नहीं !" वह भी हृदयहीन है। खास स्पेन में ऐसे लोग हैं जो उसे बिल्कुल अच्छा नहीं समझते— यद्यपि वह उनका राष्ट्रीय खेल है।'

—"यह भी तो हमारा—अर्थात क्षत्री राजवंशों का राष्ट्रीय खेल है।"

—"बेशक ! यह मैं जानता हूँ। परन्तु इतना तो आपको मानना ही पड़ेगा कि है बड़ा पाशविक।"

—"यदि माँस खाने के लिए जानवरों को वध करने में पाशविकता है तो इसमें भी है—अन्यथा इसमें भी नहीं है।"

"खैर जी, यह अपना अपना दृष्टिकोण है इस पर बहस करना व्यर्थ है।" बड़े राजकुमार ने अपना खाली ग्लास ट्रे पर रखते हुए कहा।

छोटे राजकुमार ने भी अपना खाली ग्लास ट्रे पर रख दिया। इसके पश्चात वह मुँह पोंछ कर बोला—'तो क्या आप इस हृदय-हीन खेल में भाग न लेंगे।"

—"यदि मैं स्वतन्त्र होता तो कदापि न लेता पर मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, इसलिए सम्भव है भाग लेना पड़े, परन्तु मैं प्रयत्न इसी बात का करूँगा कि न लेना पड़े।"

(३)

विजयदशमी का दिन था। राजमहल के निकट ही एक खुली जगह पर उपर्युक्त प्रदर्शन के लिए आयोजन किया गया। एक ओर राजपरिवार तथा सर्दारों के बैठने के लिए स्थान बनाया गया था और दूसरी ओर तमाशा देखने वालों के लिए। बीच में महाराज थे—उनके

बाँई ओर बड़े राजकुमार और उनके पश्चात छोटे राजकुमार तत्पश्चात राजपरिवार के अन्य लोग। महाराज के दाहिनी ओर राज्य के सर्दार लोग बैठे थे–पीछे राज–कर्म्मचारी। एक ओर चिकें पड़ी हुई थीं जिनके पीछे राजपरिवार की स्त्रियाँ थीं।

खुले स्थान के एक कोने में दस बारह भैंसे बँधे हुए थे। महाराज की आज्ञा होते ही पहले कुछ लोगों ने कसरत के खेल दिखाये। इसके पश्चात पहले कुछ सर्दारों ने भैंसों का वध किया, पर एक बार में कोई भी भैंसे का सिर नहीं काट सका। किसी ने तीन बार में किसी ने चार बार में। इनका खेल देख कर लोग खूब हंस रहे थे और तालियाँ बजा रहे थे। बड़े राजकुमार गम्भीर बने हुए बैठे थे, उनके माथे पर सिकुड़नें थीं, जिससे पता लगता था कि उन्हें यह सब खेल अच्छा नहीं लग रहा है। छोटा राजकुमार खूब प्रसन्नचित्त तथा उमंग में भरा हुआ था और लोगों के एक बार में भैंसे का सिर काटने के हास्यास्पद प्रयत्न को देख कर खूब हँस रहा था।

सहसा सब ओर सन्नाटा छा गया। महाराज ने छोटे राजकुमार की ओर देखकर किञ्चित मुस्कराते हुए कहा—"अब तुम्हारी बारी है, होशियार हो जाओ।"

राजकुमार तुरन्त उठ खड़ा हुआ। उसका मुख उत्तेजना के मारे तमतमा रहा था। महाराज को प्रणाम करके वह अखाड़े में इस प्रकार गया जैसे कोई सिंह शिकार की ओर जाता है। एक सेवक चार पाँच तलवारें और खाण्डे लिये हुए सामने पहुँचा। उसी समय दो आदमी एक भैंसे को, दो रस्सियों के सहारे जो उसके दोनों सींगों में बँधी हुई थी, पकड़े हुए लाये।

राजकुमार ने एक बार ध्यान पूर्वक भैंसे को देखा तत्पश्चात एक खाण्डा चुन कर निकाल लिया। भैंसे को जो आदमी पकड़े हुए थे वे दोनों ओर से रस्सी तान कर खड़े हो गये। भैंसे का सिर किञ्चित

झुक गया। राजकुमार ने खाण्डे को हाथ में तोला, भैंसे की गर्दन को देखा। भैंसा चुपचाप खड़ा था। उसकी साँस जोर जोर से चल रही थी और कभी कभी वह सिर उठाने का विफल प्रयत्न करता था।

राजकुमार भैंसे के पास पहुँचे। उन्होंने खाण्डे को दोनों हाथों से मजबूती के साथ पकड़ा और फुरती से उसके एक ही वार से भैंसे का सिर अलग कर दिया।

अहा हा! वाह वाह! की चीत्कार से आकाश गूँज गया। तमाशाई लोग खुशी के मारे टोपियाँ और पगड़ियाँ उछालने और राजकुमार की जयध्वनि करने लगे।

राजकुमार ने खाण्डा भूमि पर फेंक दिया और वह दौड़ कर ऊपर आया। आते ही उसने पिता के चरण छुए। इसी समय एक व्यक्ति एक पात्र में मारे गये भैंसे का थोड़ा रक्त लाया। महाराज ने उस रक्त का टीका राजकुमार के मस्तक पर लगाया और तत्पश्चात पीठ ठोकी। राजकुमार प्रसन्नता से पुलकित होता हुआ अन्दर स्त्रियों में चला गया।

इसके पश्चात महाराज ने बड़े राजकुमार की ओर देख कर कहा—"अब तुम्हारी बारी है। राजकुमार का मुख पीला पड़ गया। उसने खड़े होकर महाराज के सामने मस्तक झुकाया तत्पश्चात कहा, "पिता जी, यदि आप मुझे इस कार्य से माफी दे दें तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।"

महाराज के मुख पर विस्मय दौड़ गया। उन्होंने पूछा—"क्यों?"

—"मुझे यह कार्य पसन्द नहीं।"

"परन्तु क्षत्रियों का तो यह जातीय कार्य है।"

—"था, परन्तु अब नहीं है।"

—"यह कैसे?"

—"यह कार्य उस समय ठीक था जब शत्रु को जीतने के लिए केवल तलवार और भुजबल की ही आवश्यकता पड़ती थी। उस समय

इसका अभ्यास और प्रदर्शन दोनों ही उपयुक्त थे परन्तु आजकल जब कि बन्दूकों, मशीन-गनों, बमों का युग हैं, जब कि केवल तलवार और भुज-बल से कोई भी शत्रु नहीं जाती जा सकता, जब कि एक कमजोर व्यक्ति भी एक बड़े से बड़े बलवान और तलवार चलाने में निपुण व्यक्ति को एक क्षण में कुत्ते की मौत मार सकता है तब इस बल-प्रदर्शन का क्या अर्थ है—

—"इस बल प्रदर्शन का अर्थ है हमारा क्षत्रियपन और क्षत्रियपन की शान।"

—"वह भी ठीक नहीं है पिता जी! जब हम लोग स्वयं पराये अधीन है तब हमारा क्षत्रियपन और क्षत्रियपन की शान कहां रही? जब हमारा यह भुजबल और खड़ग कौशल हमें परवशता से नहीं छुड़ा सकता, तब यह सब क्या है? केवल यही न कि इन मूक जानवरों को कसाई की तरह काट कर हम अपने क्षत्रियत्व पर गर्व करते हैं, अपने भुजबल पर घमंड करते हैं—और इस प्रकार अपने को धोखा देकर थोड़ी देर के लिए मूर्खों के स्वर्ग में विचरण कर लेते हैं। इससे अधिक इसकी और कौन सी सार्थकता है?"

महाराज के मुख पर लज्जा के चिन्ह प्रस्फुटित हुए। वह गम्भीर होकर विचार करने लगे। राजकुमार चुपचाप महाराज की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर तक विचार करने के पश्चात महाराज ने अपने बाईं ओर बैठे हुए एक वृद्ध सरदार से धीरे-धीरे कुछ बातें कीं। इसके पश्चात उन्होंने राजकुमार से कहा—"तुम्हारा कथन ठीक हो सकता है, परन्तु अब तो यह आयोजन हो ही चुका है अब इसमें भाग न लेना अनुचित होगा। तुमने पहले से यह बात क्यों न कहीं?"

—"मैंने माता जी से कही थीं, आप से कहने का मेरा साहस नहीं हुआ। माता जी ने मेरी बात सुनी नहीं अब इस समय इस दृश्य को देख कर मेरा विचार इतना दृढ़ हो गया कि मुझे आपसे निवेदन

करने का भी साहस हो आया।"

—"परन्तु अब हो क्या सकता है! अब तो यह खेल खेलना पड़ेगा।"

"परन्तु आगे के लिए?"

"विचार किया जायगा।"

मेरा प्रस्ताव यह है कि अब आगे से मल्लों की कुश्तियाँ हों, निशानाबाजी के प्रदर्शन हों, तथा व्यायाम की कसरतें हों—ये सब बातें हों, और यह रक्तपात और हत्या का दृश्य बन्द कर दिया जावे। यदि पिता जी ऐसा करने का वचन दें तो मैं इस बार इस घृणित कार्य में भी भाग ले सकता हूँ।"

—"स्वीकार है! मेरा भी चित इस रक्तपात से घबड़ा गया है। अब भविष्य में ऐसा कभी न किया जायगा—मैं वचन देता हूँ। "इतना सुनते ही राजकुमार का मुख खिल उठा। वह तुरन्त महाराज को प्रणाम करके अखाड़े में आया। पूर्वानुसार राजकुमार के सामने खाण्डे और तलवारों का गड्ड लाया गया। राजकुमार ने एक पतली लम्बी तलवार चुनी। भैंसा भी पूर्ववत लाया गया। राजकुमार ने भैंसे को देख कर कहा—घबरा नहीं, तेरी हत्या नहीं हो रही हैं, बलिदान हो रहा है। बलिदान कभी व्यर्थ नही जाता। तेरा बलिदान आगे के लिए तेरे जैसे मूक प्राणियों की यह हत्या बन्द कर देगा इसलिए तेरी हत्या सार्थक है।" यह कह कर राजकुमार ने एक ही हाथ से तलवार का ऐसा वार किया कि भैंसे का सिर धड़ से अलग हो गया।

एक बार पुनः लोगों की चीत्कार से आकाश गूँज गया। इस बार लोग बड़ी देर तक चिल्लाते और उछलते रहे।

अखाड़े में राजकुमार हाथ में तलवार लिये तना हुआ खड़ा था। उसके मुख से प्रसन्नता की ज्योति सी निकल रही थी और उसके हृदय में कोई कह रहा था कि—आज तुम्हारी सच्ची विजय-दशमी और सच्ची विजय हुई!
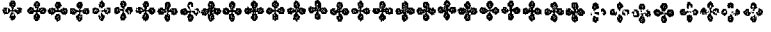
कृतज्ञता

संध्या के चार बज रहे थे। इसी समय एक मोटर कार ग्रीष्मकालीन लू तथा धूल को चीरती हुई तेजी के साथ तप्त सड़क पर चली जा रही थी। कार के भीतर दो व्यक्ति बैठे हुए थे। इनमें से एक तो वृद्ध था—अवस्था साठ के लगभग, दूसरा जवान था—अवस्था पैंतीस के लगभग, अगली सीट पर ड्राइवर के बगल में एक दूसरा व्यक्ति, जो नौकर था, बैठा हुआ था। सहसा वृद्ध बोला—"बेट्टे, थोड़ा पाणी ! ओफ कितनी गर्म हवा है।" जवान व्यक्ति ने थर्मस फ्लास्क उठाते हुये कहा—"मैंने तो तुम्हें मने किया था पर तम न मान्ने।"

"चलो, कोई डर नी। अब तो नेड़े पहुंच गये। क्यू भई मिट्ठुए अब कतेक दूर रह गया।" वृद्ध ने मेरठी भाषा में ड्रायवर से पूछा।

"अजी बस पहुँच लिये, कोई चार मील होर (और) चलना है।"

"बस !" वृद्ध ने 'सकार' पर जोर देकर कहा।

"होर क्या !" जवान व्यक्ति ने थर्मस से ग्लास में पानी भरके वृद्ध

को देते हुए कहा। "अजी यूं समझ लो–मेरठ से पन्तालीस (पैंतालीस) मील है, मुजफ्फरनगर जिला में। ढाई घन्टे चलतों हो गये। ढाई घंटे में क्या चालीस मील भी नीआये।"

वृद्ध ने ग्लास खाली करके वापस करते हुए कहा—"हाँ, इतना क्यूं नी आये होंगे ?"

जवान व्यक्ति ने स्वयं भी पानी पीया। तत्पश्चात उसने सिगरेट केश निकाला और वृद्ध से पूछा—"सिगरेट पियो ?"

"बस जी ! गर्मी में सिगरेट सोहरी (ससुरी) बुरी लगे।"

"जवान ने एक सिगरेट निकाल कर मुंह में लगाते हुए कहा—"बुरी लगे या भली सोहरी तलब तो मिट जा (जाती) है।"

"मैं ऐसी तलब को पास नी फटकरण देत्ता।" इसी समय ड्राईवर बोल उठा—"लो जी, आगया। बस यो (यह) ही गाम है।"

दो मिनट पश्चात सड़क के किनारे ग्राम के सामने एक कार रुक गई।

"किसी से पूछणा चाहिये" वृद्ध ने कहा।

"जा पण्डत, तू पूछ के आ।"

"क्या नाम हैं, नाम तो मैं भूल गया।"

"दुरो ! (दूर हो) कन्टो जाटणी नाम है।"

"हाँ जी हाँ ! इब (अब) आया !"

यह कहकर 'पण्डत' सड़क से उतर कर गाँव में प्रविष्ट हो गया। कुछ देर बाद वृद्ध बोला—"पता नी गाम में है कि नी !"

"इभी सब पता लगा जा है।"

वीस मिनट में 'पण्डत' वापस आया। जवान व्यक्ति ने कुछ दूर से ही पूछा।

"मिली ?"

"हाँ जी मिलती क्यूं ना ? चलो तुम्हैं वह बुलावे। अजी बड़े मिजाज

हैं सोहरी के।"

"लो इब भी मिजाज न होंगे। कलक्टर की माँ बणी बैट्ठी सोहरी।"

"अजी घर भी बड़ा ठाठदार बणवा रक्खा। ऐसा घर तो गाम में किसी का भी नी।"

"अजी उसे क्या कमी है।" जवान व्यक्ति ने कहा।

इस प्रकार की बातें करते हुए दोनों व्यक्ति कार से उतरे। दोनों ने अपने अपने छाते खोल लिये। 'पण्डत' आगे आगे चला। गाँव के धूलाकीर्ण मार्ग से, जिसमें कहीं गोबर जमा था, कहीं सुअर फिर रहे थे, ये लोग एक मकान के सामने पहुंचे। यह मकान पक्का तथा प्लास्टर हुआ था। मकान के आगे एक तरफ एक बैलखाना था जिसमें एक बहली तथा एक रथ खड़ा हुआ था।

इसमें चार बड़े-बड़े तथा पुष्ट बैल बँधे हुए थे। बीच में पक्का चबूतरा था। चबूतरे के बीच से घर के अन्दर जाने का रास्ता था। इस बरामदे में एक तख्त पड़ा हुआ था। तख्त के पास ही एक चार-पाई पर एक बूढ़ा जिसकी वयस सत्तर के लगभग होगी बैठा हुक्का पी रहा था। बूढ़े के मुख मंडल पर झुरियां पड़ी हुई थीं, पर उसका वर्ण तांबे के समान था। तख्त पर सूती गलीचा बिछा था और एक अध-मैला गाव तकिया रक्खा था। बुढ्ढे ने इन तीनों से तख्त की ओर संकेत करके कहा—"आओ जी बेट्ठो!" ये लोग बैठ गये और तख्त पर पड़े दो पंखों से हवा करने लगे।

(२)

कुछ देर मौन रह कर वह बोला—"हुक्म करो महराज के काम है?"

"काम तो म्हारा कन्टो से है।"

"मैं कन्टो का मालक (पति) हूँ।"

"अच्छा ! अच्छा ! तब ठीक है ।"

"अजी मेरठ के कलक्टर से एक काम करवाना है। म्हारे एक रिश्तेदार को पुलिस ने एक इल्लत में फाँस लिया । परसों जंट साहब के इजलास में उसकी पेशी है । म्हारा आदमी बिल्कुल बेगुनाह है ।"

बुड्ढा हँसने लगा । बिना दाँत के मसूढ़ों का प्रदर्शन करने के पश्चात बोला—"बेगुनाह तो सोरई (सबही) हो हैं। अपणे आदमी को कोई यूँ नी कहे है कि इसने कुछ करा है ।"

"या तो तम ठीक कहो हो चौधरी जी, पर म्हारा आदमी तो सच्चोई बेकसूर है । धरम की बात है, परमात्मा जाणे हैं ।"

"होगा मैं यूं थोडा ही कहूं हूँ कि तम झूठ बोलो हो ।" अरी सज्जण की माँ ! कोई लोण्डा-लारा (लड़का-वड़का) भी नी दिखता ।"

इसी समय एक अष्टवर्षीय बालक घर के अन्दर से आया । उसे देख कर बुड्ढा बोला—"अरे सुणियों—जा जरा अपनी दादी ने बाहर भेज दे ।"

लड़का उल्टे पैर लौट गया । थोड़ी देर में एक साठ वर्षीय वृद्धा बाहर आई । पति को देख कर उसने घूंघट माथे पर खिसका लिया और कहा—"के कहो हो ?"

वृद्ध बोला—"सज्जण की माँ ! ये बाबू लोग शहर से आये हैं, मेरठ से ! इनका कुछ काम है ।"

"के काम हैं ?" वृद्धा ने पूछा । इन लोगों ने पूर्वोक्त बात दोहराई । कहने के पश्चात वृद्ध आगन्तुक बोला—"म्हारा यो काम कर दो—जो कहो वह खिदमत करदें ।

वृद्ध बोला—"अजी देन-लेण की बात तो करो ना । ऐसे कामों में हम-धेला भी नहीं लेते । कलक्टर साहब का ये सख्त हुक्म है कि किसी से पैसा लेकर मेरे पास सिफारिस करने मत आइये ! बात यूं है बाबू जी, या मेरी घर वाली इन कलक्टर के बाप के यहाँ 'आया' थी । जब

यह कलक्टर साहब दो महीन्ने के थे तब इनकी माँ मर गई। इनका बाप ऊपर का दूध पिलाने के बहुत खिलाफ था। अब देक्खो राम जी की माया। कलक्टर साहब के पैदा होने के दो अठवारे पीच्छे इसके म्हारा सज्जरण पैदा हुआ। सज्जरण की माँ को भगवान ने अक्कल दे दी। इसने कलक्टर साहब को तो अपना दूध पिलाया और सज्जरण को ऊपर का दूध पिला कर पाला। तब से कलक्टर साहव इससे इतना हिल गये कि इसी को अपनी, माँ समझरण लगे। बस तब से यह देख लो माँ ही की तरियों (तरह) माने हैं। फिर विलायत चले गये वहाँ से कलक्टर हो आये। अब पचास रुपया महीना देवें हैं, और जब कभी या वैसे चली जा है तब सौ दो सौ रुपये और कपड़े ले आवे है। सिफारिस भी इसी की मान्ने हैं, सो तो वह दुनिया की नी मान के देत्ता।

"खैर तुम हमारा तो काम करवा दो बड़ी मेहरबानी होगी।"

"क्यूं सज्जरण की माँ, बोल क्या कहे है?"

"जो तुम कहो!"

"हो सके तो करवा दे। पेसी कब की बताई?"

"परसों है।"

"तो कल चली जाऊँगी।" सज्जन की माँ बोली।

"तो कल हम किस बखत मोटर भेजें।

"बस दस ग्यारह बजे तक आजावे। खारणा—खूरणा खाकर चली जायगी।"

अच्छी बात है त्हारी बड़ी मेहरबान्नी है।"

"ये लोग उठकर चलने लगे। वृद्ध ने पूछा—"कुछ पारणी-पूरणी मँगवाऊँ?"

"पानी तो हमारे साथ में है, ये देखो बोतल!"

"कुछ दूध-दाध?"

"अजी बस त्हारी इतनी ही मेहरबान्नी बहुत है।"

ये कह कर ये लोग चल दिये ।

(३)

दूसरे दिन सँध्या समय जब कि मेरठ के कलक्टर तथा मजिस्ट्रेट मि०—अपने बंगले के लान पर कुर्सी-मेज लगाये बैठे थे । सज्जन की मा एक ताँगे से बँगले के फाटक पर उतरी । इस समय वह लँहगा इत्यादि नहीं पहने थीं वरन् साड़ी, ब्लाउज़ तथा पैरों में चप्पल से सुसज्जित थी । वह लान की ओर बढ़ी । कलक्टर साहब उसकी ओर देखते रहे । चपरासी लोग सज्जन की माँ को देख कर दौड़ पड़े । इसी समय वह कलक्टर साहब के निकट पहुँच गई ।

कलक्टर साहब खड़े हो गये और बोले "हलो—मदर !"

"जाटनी कुर्सी पर बैठ गई । कलक्टर साहब ने हिन्दुस्तानी में पूछा—"खब खैरों आफियत !"

"हाँ बेटा ! सब राम जी की दया है ।"

कुछ देर दोनों मौन बैठे रहे । सहसा कलक्टर साहब ने पुकारा—"बेरा !"

"हुजूर ! कह कर बेरा दौड़ा ।

"मदर के लिये आइस क्रीम लाओ ।" बेरा चला गया ।

"मैं एक बड़े ज़रूरी काम से आई हूं ।"

"किसी की सिफारिश ! मदर तुम बहुत परेशान करती हो ।"

"तुझे न परेसान करूँ तो किसे करूँ बेट्टे ? तेरी ही बदौलत लोग मुझे पूछते आवें हैं । वैसे कौण पूछे है ?"

"बोलो क्या बात है ?"

जाटनी ने एक कागज निकाल कर धर दिया और बोली—"कल जंट साहब के यहाँ पेशी है । इसे छुड़वादे, बिचारा बिल्कुल बेकसूर है ।"

कलक्टर साहब ने कागज देख कर कहा—"तुम ने अच्छी तरह

समझ लिया है बेकसूर है ?"

"हाँ बेट्टे बिल्कुल बेकसूर है।"

"आल राइट मदर ! छोड़ दिया जायगा। बस !"

"बस बेट्टे ! भगवान तेरी हजार बरस की उमर करे और तुझे लाट बणाये मेरी आँखें तुझ को देख के ठंडी हो जाती हैं।"

इस समय बेरा आइस क्रीम का ग्लास लेकर आगया। जाटनी आइस क्रीम पीने लगी।

कलक्टर साहब बेरा से बोले—"देखो मदर के लिए खाना बनवाओ। क्या खाओगी ?"

जाटनी बोली, "जो बण जायगा खालूँगी।"

कलक्टर साहब बोले—"बढ़िया खाना बनवाओ और एक पलंग निकलवा कर लान पर डलवाओ, रात को सोने के लिए। मेम साहब को बोलो मदर आई हैं।"

बेरा के जाने के पश्चात कुछ देर में मेम साहब लपकती हुई आई और "ओ मदर।" कह कर वृद्धा से चिमट गई। वृद्धा ने उसे बड़े प्रेम-पूर्वक गले लगाया।

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात वही पार्टी पुनः कन्टो जाटनी के घर पहुंची। उनके साथ में एक नौकर एक तौलिये से ढका एक बड़ा थाल लिये हुए था। वृद्ध से मिल कर इन्होंने थाल उसके सामने रक्खा। थाल में मिठाई तथा एक दोशाला रक्खा था।

वृद्ध ने पूछा—"यो क्या है ?"

"यह त्हारी नजर है चौधरी।"

"अजी राम भजो बाबू जी, यो तो म्हारे लिए गऊ के माँस बराबर है। इसे वापस ले जाओ बाबू ! मैंने त्हारे से पहले ही कह दिया था कि, ऐसे कामों में तो हम धेल्ला भी नी लेत्ते। अभी उस दिन सज्जण की माँ त्हारे काम को गई थी। सौ रुपये और कपड़ा ले आई। म्हारे कमी

किस बात की है।"

"बेशक पर म्हारी नजर तो कबूल करलो।"

"अच्छा यो दुशाल्ला तो ठा [उठा] लो।"

"क्यूं।"

"बस ठा लो।"

दुशाला उठा लिया गया। मिठाई बुड्ढे ने उसी समय गाँव के आदमियों को बुला कर बाँट दी। स्वयं उसका एक कण भी नहीं लिया।

जब ये लोग चले तो रास्ते में वृद्ध सज्जन बोले—"कितने सच्चे आदमी हैं ये लोग।"

"तभी तो कलक्टर साहब इनकी इतनी कदर करे है।"

"ठीक है बिना गुण के कदर नी होत्ती।"

दाँत का दर्द

पाँडे जी वैसे तो सज्जन थे—सौम्य प्रकृति और गम्भीर स्वभाव तो उनका था ही, परन्तु उनमें कुछ बुद्धूपन की भी पुट थी। लोगों को उनकी सूरत देखकर उनसे हंसी मजाक करने की इच्छा होती थी। कुछ लोगों की शकल में यह दोष होता है कि साधारणतया परिहास न करने वालों का चित्त भी चलायमान हो जाता है। पाँडे जी ऐसे ही लोगों में से थे। पाँडे जी का एक दुर्भाग्य यह भी था कि जब पाँडे जी चिन्तित अथवा खिन्न होते थे तभी लोग उनसे अधिक परिहास करते थे। इनमें न पाँडे जी का दोष था और न परिहास करने वालों का—दोष था केवल पांडे जी की अकल का।

सबेरे का समय था। पाँडे जी अपने द्वार के पत्थर पर लौकी सा मुंह लटकाये बैठे थे पाँडे जी की शकल लोगों को निमन्त्रण दे रही थी कि आओ, आज अच्छा मौका है।

एक पड़ोसी लोटा हाथ में लिये दूध लेने जा रहा था पांडे जी की

शकल देख कर ठिठुक गया और बोला—"क्या बात है पाँडे जी, आज बहुत गुमसुम बने बैठे हो ?"

पांडे जी ने पड़ोसी की ओर इस दृष्टि से देखा मानों वह बेचारा कोई चोर या उठाईगीर हो। देखकर मुंह घुमा लिया। कुछ उत्तर न दिया। उसने पुनः प्रश्न किया—"क्या मामला है ?"

पाँडे जी बोले—"मामला क्या है, तुम मजे से दूध लाओ जाकर।" पाँडे जी ने कुछ झल्ला कर कहा।

"दूध तो लावेंगे ही परन्तु आपकी हालत कुछ पिलपिली दिखाई पड़ रही है।"

"हालत पिलपिली है तो……आह रे !" यह कह कर पांडे जी ने बाएं गाल पर हाथ रख लिया।

"क्या दाँत में दर्द है ?" पड़ोसी ने पूछा।

"पाँडे जी की मुद्रा एकदम परिवर्तित हो गई। बड़े विनम्र तथा दीन भाव से बोले—"हाँ भैया, रात से दर्द है। रात भर पलक से पलक नहीं लगी।"

इसी समय एक दूसरे महाशय आकर खड़े हो गये। पड़ोसी ने पूछा—"कुछ दवा लगाई ?"

"हाँ, तमाखू दबाई थी, लेकिन कुछ फायदा नहीं हुआ।"

"किसी डाक्टर को दिखाओ। वह फुरहरी लगा देगा। बस दर्द बन्द हो जायगा।" दूसरे महाशय ने कहा।

"डाक्टर-वैद्य सब ऐसे ही हैं।" पांडे जी ने कहा। इसी समय एक तीसरे महाशम आगये वह बोले—"क्या बात है ?"

पांडे जी का 'मूड' पुनः बदला। बोले—"जाओ, अपना काम देखो आकर खड़े हो गये--क्या बात है ! अब सबको बात बताओ।"

पड़ोसी बोल उठा—"इस समय बोलो नहीं। पांडे जी के दांत में दर्द है। रात भर सोये नहीं हैं।"

"दवा क्या की ?"

"तमाखू दबाई थी।"

"तमाखू—यह किस बेवक़ूफ ने बताया ! यह तो दिन रात तमाखू फाँकते हैं। तमाखू इन्हें फायदा न करेगी। तमाखू उसे फायदा करती है जो तमाखू नहीं खाता।"

"तब फिर क्या करें ?"

"दाँत उखड़वा दें। दांत हिलता खिलता जरूर होगा—काहे पाँडे जी।"

हाँ भैया, दाढ़ है। बहुत हिलती है। ठण्डा-गर्म, खट्टा-मीठा सब ससुर लगता है। समझ में नहीं आता, क्या खायें-पियें। जोर से साँस लेते हैं तो उस दाढ़ में हवा लगती है तो और दर्द होने लगता है—यह मजा देखो।"

"तो बस, दाढ़ उखड़वानी पड़ेगी। बिना उखड़वाये दर्द न जायगा।"

उखड़वायेंगे तो हम सात जन्म नहीं। अपना दाँत खुद ही उखड़वायें—अच्छी कही।" पाँडे जी ने कहा।

"कष्ट देती है तो उखड़वाना ही ठीक है।"

"उल्लू हो। आँख आजाय तो आँख निकलवा दें, जुकाम हो जाय तो नाक कटवा दें—अच्छी कही !"

"पाँड़े जी, दाँत तो निकल ही जायगा—जब हिलता है तो रहेगा नहीं, हाँ जब तक रहेगा तब तक कष्ट देगा, इसलिए कष्ट से बचने के लिए उखड़वा डालना ही ठीक है।"

"वाह बेटा, यह खूब कही। शरीर तो एक दिन मिटेगा ही, जब तक रहेगा कष्ट ही देता रहेगा, इसलिए संखिया खाकर सो रहो। किस पाठशाला में यह सब पढ़े हो। तुम्हारे जैसे सलाहकार आह रे।"

पाँडे जी ने गाल पर हाथ रख लिया।

पड़ोसी महोदय बोल उठे—"पाँडे जी, बिना दांत निकलवाये दर्द नहीं जायगा। इतनी बात तो हम भी जानते हैं।"

यह कह कर वह व्यक्ति चल दिया। उसके साथ साथ अन्य लोग भी चल दिये।

(२)

ग्यारह बजे के लगभग एक सप्त वर्षीय बालक ने पांडे जी को एक गोली लाकर दी और कहा—"वह बाबू जी जो उधर रहते हैं, उन्होंने भेजी है और कहा है कि इसे दाँत के नीचे खूब जोर से दबा लें। दर्द चला जायगा।"

पांडे जी ने पूछा—"किस बाबू ने दी है?" परन्तु लड़के ने कोई उत्तर न दिया। पाँड़े जी बोले—"खैर, कोई अपने मुहल्ले का ही होगा।" यह कहकर आपने गोली मुंह में रख ली और उसे पीड़ित दाढ़ के नीचे जोर से दबा लिया। गोली फूट गई और उसमें से लाल मिर्चा जैसी इतनी तीव्र चरफराहट निकली कि पांडेजी बिलबिला गये। जल्दी से पम्प के नीचे जाकर कुल्ली की। पँडायन ने पूछा—"क्या हुआ?"

"न जाने किस ससुरे ने मिर्चें भर कर गोली दे दी।"

"किसने दी?"

"क्या जाने एक लड़का दे गया था।"

"किसी डाक्टर-वैद्य की दवा क्यों नहीं करते?"

"दवा क्या करूं? सब यही कहते हैं कि उखड़वा डालो।"

"ठीक तो कहते हैं। जब तक दाँत निकल नहीं जायगा, दर्द नहीं जायगा।"

"अपने आप निकल जायँ तो निकल जाँय, हम क्यों उखड़वायें?"

"न उखड़वाओ तो पड़े पड़े भुगतो। रात भर न अपना सोये, न मुझे सोने दिया। ऐसे कब तक चलेगा?"

"अच्छा तो तुम एक दिन में ही ऊब उठीं। ईश्वर न करे, यदि मैं दस-बीस दिन को पड़ जाऊँ और तुम्हें सोने को न मिले तो तुम पास भी न फटको। हरे-हरे! शास्त्र ने ठीक ही कहा है—

न सोदरो न जनको जननी न जाया।
नैवात्मजो न चकुलं विपुलं धनं वा॥
संदृश्यते न किल् कोऽपि सहायको मे।
तत्मात् त्वमेव शरणं मम शंखपाणे॥

"संसार में भगवान को छोड़कर और कोई किसी का नहीं है। (गाकर) मतलब के सब यार हैं बन्दे, मतलब के सब—आह रे, मर गया!"

"तुम से कौन खोपड़ी लड़ावे? जैसा मन हो, वैसा करो!"

"सो तो मैं करूंगा ही। दाँत के मामले में मैं किसी की राय न मानूंगा।"

उस दिन भी पाँड़े जी रात भर जागे। अगले दिन इतवार पड़ा। पाँड़े जी द्वार पर बैठे थे। छुट्टी का दिन होने के कारण लोग निश्चिंत भाव से उनके पास आकर बैठ गये। एक बोला—"दर्द कैसा है?"

"दर्द तो वैसा ही है, परन्तु हमारी दशा खराब है। कल रात भी सोने नहीं पाये।"

"उखड़वा क्यों नहीं डालते?"

पाँडे जी बोले—"उखड़वाने में कष्ट बहुत होगा।"

"न पाँड़े जी, आप को पता भी न चलेगा।"

एक ने पूछा—"कै दाँत हैं?"

"पूरी बत्तीसी उखड़वाने की ताक में हो क्या! कै दाँत हैं, चले वहाँ से!" पाँड़ेजी बिगड़कर बोले।

दूसरा बोला—"हमें चार दाँत मालूम होते हैं।"

यह सुन कर लोगों ने अट्टहास किया। अब पाँड़े जी समझे।

बोले—

"अबे, मुझे भी कोई बछड़ा या बैल समझ रक्खा है ? कै दांत हैं ! खैरियत इसी में है कि चलते-फिरते नजर आओ, नहीं तो पिट जाओगे ।"

"सो तो दांत के दर्द का क्रोध किसी न किसी पर उतारा ही जायगा ।"

"जाओ भई, तुम लोगों को कोई काम नहीं है क्या ?"

"आज इतवार है ।"

"तब तो हमारी शामत है । भगवान ही खैर करें ।" पाँडेजी बोले ।

"दांत तुम्हें उखड़वाना पड़ेगा ।"

"कोई जबर्दस्ती है, नहीं उखड़वाते ।"

(२)

अन्त को लोगों के समझाने बुझाने और कष्ट की अधिकता के कारण पाँडे जी दांत उखड़वाने के लिए राजी हुए, परन्तु यह शर्त कर ली कि तकलीफ न हो ।

पाँडे जी दांत उखड़वाने चले तो मुन्नू की माँ से बोले—"जाता हूँ मुन्नू की माँ, जिन्दगी है तो फिर आजाऊँगा, एक तो ।"

इतना कह कर पाँडे जी रोने लगे । मुन्नू की मा बोली—"तुम न जाने कैसे आदमी हो । जरा सा दाँत क्या उखड़वाने चले जानो—अब क्या कहूँ !"

आँखें पोंछते हुए बाहर निकले । मुन्नू की तलाश की—"मुन्नू कहाँ है ?"

मुन्नू बोला—"मैं आप के साथ ही चल रहा हूँ ।"

"हाँ बेटा, तुम हमारे साथ ही रहो ।"

सब लोग चले । पाँडे जी के साथ मुन्नू था । मुहल्ले के तीन-चार बेफिक्रे भी साथ हो लिए थे । रास्ते में पाँडे जी मुन्नू से अपना देना

पावना बताने लगे। एक व्यक्ति बोला—"हमारे दस रुपये भी बता देना।"

"तुम्हारे रुपये कैसे ?"

'हम से उधार लिए थे आपने।"

"कब ?"

"अब ऐसी कहोगे ?"

"हिश्त ! बेटा मुन्नू, जितना मैंने बताया है, उससे अधिक मुझे किसी का एक पैसा भी नहीं देना है। इन बदमाशों से सावधान रहना। कोई कुछ कहे, किसी की न मानना।"

"तो क्या अब घर लौटने का इरादा नहीं है ?" एक ने पूछा।

"तुम लोगों के मारे जब लौटने पाऊँगा तब तो" !"

जब डाक्टर की दुकान निकट आई तो आप एक स्थान पर बैठ गये। साथ वालों ने पूछा—"यहाँ क्यों बैठ गये ?"

"चलते हैं जल्दी क्या है ?"

"हां भई, जितनी देर दुनिया में रह लें। अच्छी तरह सब चीज देख लो, फिर देखने को मिले या न मिले। कुछ खाओगे ?"

"हाँ, इच्छा तो थी, पर कहाँ मिले ?"

"मिलेगी क्यों नहीं—बताओ ?"

"बाजरे की रोटी और कुलथी की फलियां !"

"भइ वाह, अन्त समय मन भी चला तो किस पर !"

"हैसियत की बात है। जो खाते रहते हैं, उसी को मन चलता है। जो चीज कभी नहीं खाई, उस पर मन कैसे चले !"

"हाँ, हमने कभी काहे को कुछ खाया है ? पर तुम लोग क्यों साथ लगे हुए हो, अपने घर क्यों नहीं जाते ?" पांडे जी बोले।

"और सुनिये। हम लोग तो इसलिए साथ चल रहे हैं कि भगवान

करे, तुम्हें कुछ हो गया तो तुम्हें घर उठा लावेंगे। लेकिन तुम कहते हो कि घर जाओ। नेकी का जमाना नहीं रहा!"

"क्या कहने हैं—बड़े नेक आदमी हो न—मनाते हैं कि कुछ हो जाय!"

"यह हमने कब कहा। अब यह कलंक भी लगाओगे?"

"अरे भई, इनकी बात का बुरा न मानो। जिसकी जिन्दगी का कुछ ठीक न हो, उसकी बात का बुरा न मानना चाहिए।"

"अच्छा, अब चलोगे या यहीं धरे रहोगे?"

पाँडे जी उठे तो एक बोला—"राम नाम सत्य है!"

यह सुनना था कि पाँड़े जी आग हो गये। बोले—"अब मैं कदापि न जाऊँगा। कम से कम इन बदमाशों के साथ तो हर्गिज नहीं जाऊँगा। ये लोग साथ रहे तो मेरी जान का खतरा है। बेटा मुन्नू! इनको भगाओ, तभी मैं डाक्टर के यहाँ चलूंगा।"

यह कहकर आप पुन: बैठ गये।

अन्त को लोगों के समझाने बुझाने से शांत हुए और उठ कर चले। एक आदमी ने आगे बढ़ कर डाक्टर को पहले ही सब समझा बुझा दिया। पांडे जी के पहुँचते ही डाक्टर ने कहा—"कुछ घबराने की बात नहीं है। अभी सब ठीक हो जायगा।"

"कुछ खटका तो नहीं, डाक्टर साहब?"

"बिलकुल नहीं, आइये।"

पांडे जी की आंखों में आँसू आ गये। साथ वालों से बोले—"भैया, कहा सुना माफ करना। बेटा मुन्नू तुम मेरे साथ रहो।"

डाक्टर ने कुर्सी पर बैठाल कर कहा—"हां तो देखूं कौनसा दांत है।"

पांडे जी ने बताया। डाक्टर ने पहले उँगली लगा कर टटोला। पांडे जी चिल्लाये—"अरे मर गया डाक्टर साहब!"

"तुम तो बेकार हल्ला मचाते हो। अभी तो मैंने कुछ किया भी नहीं। हां, ज़रा अच्छी तरह मुंह खोलो।" यह कह कर डाक्टर ने सन्सी उठाई। पांडे जी को यह संसी कसाई की छुरी के समान दिखाई पड़ी। भय से कांपने लगे। बोले—"ज़रा एक मिनट ठहर जाइये। कलेजा धड़ धड़ कर रहा है।"

"हमें इतनी फुर्सत नही है।" कह कर डाक्टर ने सन्सी मुंह में घुसेड़ दी। पांडे जी बकरे की भांति चिल्लाने लगे। डाक्टर साहब ने तुरन्त दांत खींच लिया। घर लौटे तो लगे शेखी बघारने—"मैंने झट हनुमान जी का ध्यान किया।"

"बकरे की तरह चिल्ला रहे थे या हनुमान जी का ध्यान कर रहे थे!"

"वह कोई और चिल्लाता होगा। डाक्टर के यहां तमाम रोगी थे।"

दूसरे दिन पांडे जी ने अपने हाथ से अपना दांत गंगा में छोड़ा। दांत को गंगा जी में फेंक कर पांडे जी ने अँगौछे से आँसू पोंछे। मुहल्ले का एक आदमी देख रहा था। वह बोला—"क्यों पांडे जी, अपने पिता की अस्थियां फेंकी क्या?"

पांड़े जी बोले—"इन बदमाशों के मारे कहीं चैन नहीं। हर समय पीछे लगे रहते है!"

यह कह कर स्नान करने चले गये।
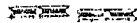
वीर-परीक्षा

काबुल की ओर प्रयाण करते हुए महाराजा रणजीतसिंह की सेना ने रावलपिंडी के निकट पड़ाव डाला। सूर्यास्त से कुछ पूर्व का समय था। महाराजा अपने निजी डेरे के आगे खड़े थे—उनके पास हरीसिंह नलवा, सरदार फुलसिंह इत्यादि योद्धा खड़े हुए सेना के प्रबन्ध का निरीक्षण कर रहे थे। इसी समय छः सात सैनिक दो सिक्ख युवकों को बीच में लिए हुए महाराज के डेरे की ओर आते दिखाई पड़े। हरीसिंह नलवा से महाराज ने पूछा—"क्या बात है ?"

"कोई अपराधी मालूम होते हैं।"

थोड़ी ही देर में वे निकट आ गये। महाराज के सन्मुख पहुँच कर सैनिकों ने महाराज का अभिवादन किया और वे दोनों युवक चिल्ला उठे—"महाराज की जय ! हरीसिंह की जय !"

हरीसिंह ने पूछा—"क्या मामला है ?"

सैनिकों में से एक ने कहा—"ये हुजूर से कुछ अर्ज करना चाहते हैं।"

उनमें से एक युवक बोला—"हमने बहुत दिनों से सुन रक्खा है कि महाराज रणजीत सिंह बड़े वीर हैं, उनका सेनापति हरीसिंह नलवा बड़ा वीर है और वीरों की कद्र करता है। इसलिए हम हुजूर की सेवा में नौकरी करने के अभिप्राय से आये हैं।"

महाराज चुपचाप उनकी बातें सुन रहे थे। हरीसिंह ने कहा—"हमारी सेना में केवल वीरों को नौकरी मिलती है। जो वीर नहीं हैं उनके लिये हमारी सेना में स्थान नहीं है।"

"हां हम वीर हैं, हमारी रग रग में वीरता है, हमारे खून की एक एक बूंद में वीरता है।"

महाराज रणजीतसिंह मुस्करा दिये, परन्तु मौन रहे। हरीसिंह ने कहा, "जो वीर होता है वह अपने मुख से अपने को वीर कभी नहीं कहता।"

युवक निर्भीकता पूर्वक बोला तो कोई भी वीर अपना परिचय देते हुए अपने को कायर नहीं कहता। हुजूर ने जब हमारा ठीक ठीक परिचय पूछा तो हमें सच सच कहना पड़ा।

महाराज के मुख पर प्रशंसा सूचक भाव का प्रादुर्भाव हुआ परन्तु वह मौन ही रहे। हरीसिंह कुछ अधीर होकर बोला, "तुम दोनों कौन हो?"

"हम दोनों सगे भाई हैं।"

"कहां के रहने वाले हो?"

"यहां से कोस भर की दूरी पर एक गांव है वहीं के रहने वाले हैं।"

"गांव का नाम?"

युवक ने बता दिया।

हरीसिंह ने कहा—"हमारे पास रंगरूटों के लिए जगह नहीं है।"

"हम तलवार, भाला, तीरकमान चलाना जानते हैं।"

"हम बड़ी आशा से आये थे। हमारा उत्साह युद्ध में भाग लेने का है। युद्ध के पश्चात विश्राम के लिए जाती हुई सेना में भर्ती होने की हमारी इच्छा नहीं है।"

"अच्छा तो, तुम्हें युद्ध करने का उत्साह है?" हरीसिंह ने कुछ व्यंग्य से पूछा।

"हाँ, हुजूर!"

"युद्ध करना जानते हो?"

"बहादुर पैदायशी योद्धा होते हैं।"

महाराज के मुख पर पुनः हल्की सी मुस्कान आ गई, परन्तु वे मौन थे। हरीसिंह कुछ चिढ़ कर बोला—"अच्छा अपनी बहादुरी और योद्धापन का कुछ नमूना दिखा सकते हो?"

"जो हुजूर की आज्ञा हो।"

कुछ क्षणों तक सोच कर हरीसिंह ने कहा—"अच्छा आपस में ही तलवार चलाकर दिखाओ।" इतना सुनते ही सैनिक पीछे हट गये। दोनों युवकों ने म्यान से तलवारें निकालीं और एक दूसरे के सम्मुख डट कर खड़े हो गये। कुछ क्षणों तक दोनों एक दूसरे को देखते रहे। एक ने दूसरे भाई से कहा—"भाई तू बड़ा वीर है।"

दूसरा भाई बोला—"भाई तू भी बड़ा वीर है। अपनी वीरता की लाज रखना।"

"लाज रखने वाला परमात्मा है।" दूसरे ही क्षण तलवारें चलने लगीं। अस्त होते हुए सूर्य की सुनहली किरणों के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि दो सुनहली विद्युत रेखाएं आपस में मिलतीं और अलग हो जाती हैं। दोनों युवक मृत्यु की दो लपलपाती हुई जिव्हाओं से खेल रहे थे। महाराज, हरीसिंह तथा अन्य उपस्थित सरदार बड़े ध्यान पूर्वक दोनों का युद्ध देख रहे थे। सहसा एक ने पैतरा बदल कर दूसरे की छाती में तलवार घुसेड़ दी। उसने गिरते गिरते तलवार का हाथ जो

मारा तो दूसरे का सर धड़ पर से झूल पड़ा-दोनों एक साथ ही धराशायी हुए। महाराज स्तब्ध थे। हरीसिंह अवाक् ! अन्य सरदार चकित !

दोनों की लाशें कुछ देर तक तड़प कर ठंडी हो गईं। महाराज के नेत्रों में आंसू छलछला आये। वह आँखें पोंछते हुए बोले—"क्यों हरी ! वीरों की परीक्षा लेने का परिणाम देखा ?" हरीसिंह ने सिर झुका लिया, उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी।

महाराजा ने सैनिकों से कहा—"इनके गांव में जाकर पता लगाओ कि इनके घर में कौन हैं। चुपचाप पता लेकर आओ—यहाँ का हाल किसी को मत बताना।"

सैनिक तुरन्त चल दिए।

\+ \+ \+

महाराजा रणजीतसिंह, हरीसिंह नलवा तथा कुछ अन्य सरदार और सैनिक गाँव के एक कच्चे घर के सन्मुख खड़े थे। एक ओर कपड़े से ढके हुए दो युवकों के शव रक्खे थे। महाराज के सन्मुख एक वृद्धा खड़ी आंचल से नेत्रों को पोंछ रही थी। नेत्र पोंछते हुए उसने महाराज से पूछा कि महाराज ने स्वयं पधारने का कष्ट क्यों किया ?

महाराज बोले, ऐसे वीर पुत्रों को जन्म देने वाली माता का दर्शन करके अपना जन्म सफल करने के लिए मैं यहां आया हूँ। मां तुम धन्य हो ! ईश्वर करे ऐसी मातायें पंजाब के घर घर में हों।

वृद्धा मौन खड़ी रही।

सहसा महाराज घुटनों के बल बैठ गये और वृद्धा के चरण छूकर बोले "मै काबुल पर चढ़ाई करने जा रहा हूँ, मां अपना आशीर्वाद दो कि मेरी यह यात्रा सफल हो।" वृद्धा का मुख तमतमा उठा। उसने सिर ऊंचा करके और अपने पुत्रों के शवों की ओर संकेत करके कहा "जिसके राज्य में ऐसे बालक उत्पन्न होते हैं वह क्या कभी हार सकता है। जाओ तुम्हारी विजय निश्चित है।"

महाराज उठ खड़े हुए। सहसा वृद्धा बोली—"वह देखो मेरे दोनों लाल मुझ से विदा मांग रहे हैं कहते हैं कि हम काबुल जा रहे हैं। वह देखो दोनों जा रहे हैं।"

सब ने वृद्धा के संकेतस्थान की ओर दृष्टि डाली तो देखा कि एक बवण्डर चक्कर खाता हुआ पश्चिम की ओर जा रहा है।

दशहरे का मेला

"सन्तू भाई ! कल चलो शहर का मेला देख आवें ।"

जंगल की ओर जाते हुए एक अर्द्धवयस्क किसान ने चौपाल में बैठे हुए अपने समवयस्क व्यक्ति से कहा ।

"क्या करोगे चलके, बे-स्वारथ की परेसानी उठाओगे ।"

"परेसानी काहे की । यहाँ से रेल में बैठो, आध घंटे में शहर आ पहुँचो । वहाँ रात को रामलीला देखो और सबेरे गजरदम की गाड़ी से चल देओ—दस बजे तक घर आजाओ ।"

सन्तू भाई कुछ क्षण विचार करके बोले—"कल घर में भी तो तिवहार है ।"

"अरे सो बारह बजे तक घर का तिवहार कर लेओ—गाड़ी डेढ़ बजे जाती है ।"

"हमी तुम हैं या कोई और भी चलेगा ।"

"पहले हमारी—तुम्हारी मिसकौट हो जाय फिर जिसे चलना होगा चला चलेगा ।"

"अच्छा साम को जवाब देंगे।"

"जवाब क्या, बस तैयारी कर लेओ। साल भर का मेला है। अगले साल कौन जाने क्या होगा। आजकल दम-दम का भरोसा नहीं है। लछमन काका को देख लेओ—चार दिन पहिले अच्छे भले थे आज कहीं निसान नहीं है।"

"हाँ बिसनू भइया, लछमन काका का तो अचंभा ही हो गया। दो दिन में चटपट हो गये। और हट्टे-कट्टे थे, कमजोर नहीं थे। उमर तो जरूर पचास के पेटे हो गई थी।"

"तो कौन बहुत थी। उनकी अम्माँ तो अभी बैठी हैं। न हाथ-पैर चलें, न सूझ पड़े, पर मरने का नाम नहीं लेती है।"

'कागज नहीं फटा है। बिना कागज फटे मौत नहीं आती।"

"सो तो ठीक ही है।"

"अच्छा तो साम को मिलेंगे।"

यह कह कर बिसनू भाई चले गये।

बिसनू भाई के चले जाने के थोड़ी देर बाद एक और व्यक्ति उधर से निकला। यह सन्तू भाई से कम आयु का था। सन्तू भाई उससे बोले—"काहे हो बसन्त! कल सहर चलोगे मेला देखने।"

बसन्त ठिठुक कर बोला—"क्या, जारहे हो?"

"हाँ इरादा तो है। चलो तुम भी देख आओ।"

"तुम जाओगे तो हम भी चले चलेंगे।"

"हाँ चलो देख आओ!"

"चले चलेंगे।"

तो पक्की बात रही?"

"हाँ पक्की बात है।" कह कर बसन्त भी अपने रास्ते लगा।

सन्तू पुकार कर बोला—"कल डेढ़ बजे की गाड़ी से चलेंगे।"

"बहुत ठीक!" कहता हुआ बसन्त आगे बढ़ गया।

थोड़ी देर पश्चात एक और आदमी निकला। सन्तू ने उसे भी मेले का निमन्त्रण दिया। वह बोला—"क्या करेंगे जाकर मुफ्त में दो चार रुपये खर्च हो जायँगे।"

"तो कौन घाटा है। आजकल किसान के पास पैसे की कमी नहीं हैं, केसर के भाव गेहूँ बिक रहे हैं।"

"वही राम, वही रावन और वही रामलीला। कोई नई चीज हो तो देखें।"

दसहरा तिवहार भी तो पुराना है, फिर काहे मनाते हो?"

"वह बात दूसरी है और चले भी चलते पर कल हमारे यहाँ पाहुन आने वाले हैं।"

"पाहुन! कौन पाहुन हैं, घर का तिवहार छोड़ कर तुम्हारे यहाँ आवेंगे।"

"साम को आयँगे, दोपहर को घर में तिवहार मना लेंगे।"

"यह कहो। तब तो तुम्हारा जाना नहीं हो सकता।"

"हाँ भइया—नहीं तो चले चलते, कोई कसम थोड़े ही खाई है।"

"नाहीं कसम खाने का कौन काम है।"

इस प्रकार सन्तू भाई ने दो और व्यक्तियों को तैयार कर लिया। अब कुल चार आदमी हो गये। संध्या समय बिसनू भइया के आने पर सन्तू भाई ने कहा—"सहर चलने का विचार पक्का हो गया। बसन्त और मंगल भी चलेंगे।"

"तो चार आदमी होगये। बड़ी अच्छी बात है। अब मजा रहेगा।"

"हाँ इसी मारे तो हमने उन्हें तैयार किया। दो जनों में मजा न आता।"

"बड़ा अच्छा किया। हमने भी दो तीन आदमियों से कहा, पर वह नट गये।"

"जाने देओ। हम चार काफी हैं—ज्यादा भीड़-भाड़ भी ठीक नहीं। तो कल डेढ़ बजे वाली से--क्यों ?"

"हां वही ठीक रहेगी—घर का तिवहार भी हो जायगा।"

(२)

दूसरे दिन निश्चित समय पर चारों स्टेशन की ओर चले। बिसनू भाई ने सन्तू भइया से पूछा—"तमाखू की थैली ले ली है !"

"हां सो तो सबसे पहिले रख ली थी।"

"हमारे पास भी तमाखू की थैली है।" मंगल ने कहा।

"अच्छा तो फिर बन जाय।"

चलते-चलते मंगल ने तमाखू बनाई। चारों व्यक्तियों ने थोड़ी-थोड़ी खाई।

"काहे भइया ठहरे का कहां डौल होई ?" सन्तू ने बिसनू से तमाखू भरे हुए मुख से पूछा।"

"ठहरै का डौल बहुट है। ढरमसाला है।"

"टो टौन डुइ-चार डिन ठहरै का है।"

"हां हो ! बारह एक बजे तो रावना जरावा जाई। डुई-टीन घन्टा का मामला रहि जाई—गंगा किनारे पड़ रहेंगे।"

स्टेशन पहुँचे तो पता लगा कि गाड़ी आने में थोड़ी देर रह गई है। टिकिट बँट रह था। बसन्त टिकिट लेने गया। परन्तु लौट कर बोला—"पन्द्रह आना माँगते हैं।"

"एक टिकिट का ?" बिसनू ने पूछा।

"हाँ कहते हैं गाड़ी में जगह नहीं है।"

"पन्द्रह आना का टिकिट लेने से जगह हो जायगी ?"

"सिकिण्ड-क्लास में जगह है—उसी का किराया पन्द्रह आना है।"

"तो क्या सलाह है ?"

"इसी मारे हम नहीं आते थे।" सन्तू ने कहा।

"अरे अब आगये हो तो चलो देखा जायगा।" चारों ने एक-एक रुपया मिला कर टिकिट लिये।

गाड़ी आई। चारों सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में घुसने लगे तो लल-कारे गये—"कहाँ घुसे आते हो।"

"हमारे पास सिकिण्ड का टिकिट है!"

परन्तु जब घुसने न पाये तो फिर भागे। बिसनू एक तीसरे दर्जे में घुसने लगा। भीड़ बहुत थी। भीतर के आदमी बिसनू को बाहर ढकेल रहे थे। बिसनू बोला—"अरे जरा तुम बाहर से जोर लगाओ—हम गिरे पड़ते हैं।"

तीनों ने बिसनू को भीतर धकेलना आरम्भ किया। इस प्रकार बड़ी कठिनता से चारों अन्दर पहुंच गये, परन्तु बैठने की जगह न थी।

"बड़ी लूट होने लगी है, रेल में-सिकिण्ड का टिकिट है, पर खड़े होने की भी जगह नहीं। यह अन्धेर तो देखो।"

"ऊपर काहे चढ़े बैठते हो।" बिसनू ने एक अन्य व्यक्ति से कहा।

"हम हूँ टिक्कस लीन है।"

"हेंह बड़े टिक्कस वाले। सिकिण्ड का टिकिट है हमारे पास। हमें तो बैठे की जगह मिली नहीं।"

"बैठे की काहे का—चरपइया डारिके पौड़े की कहो। बड़े लाट साहब के नाती हैं न।"

इस पर कुछ अन्य लोग भी हँस पड़े।

"जरा जुबान सँभारि के बात कीन्हेओ—यौ बताये देइत है।"

इसी समय एक व्यक्ति ने बिसनू के पैर पर पैर धर दिया।

"ओह! ओह! दइया रे, पाँय कचर डारयो।"

"देखो खून तो नहीं निकला?" बसन्त बोला।

"कैसे देखें, पैर ऊपर उठाने की जगह तक तो है नहीं।"

इसी समय रेल रुकी ! सन्तू द्वार से भिड़ा हुआ खड़ा था—झटके से उसका सिर खटाक से द्वार के ऊपरी भाग से टकराया। वह सिर सहलाता हुआ बोला—"बड़े जोर से लागगा हो। ऊ हू हू हू।"

यह दशहरे का त्योहार मनाया जा रहा था।

"बड़ी गर्मी है—प्रान निकले जाते हैं।"

"कौनो तरह इस्टेसन आवे तो खैर है।"

"तमाखू खइहौ—बिस्नू काका।" बसन्त ने पूछा।

"हाँ ! हाँ ! बना लेओ।"

"सन्तू काका, थैलिया लावन देओ।"

"आ हा हा ! पीछे हटौ, हो, कोहनी मार दीन्हों कोखे माँ।" मंगल बोला।

"लेओ थैली बसन्त।"

बसन्त ने तमाखू बना कर जो फटफटाई तो लोगों को छींकें आने लगीं। "यौ का की—आछीं।"

"छीं—बड़े खराब आद—छीं।"

"ई लोग तो नाक माँ दम—आछीं।"

ढकेल देओ इनका नी—छीं।"

सन्तू तो द्वार के पास ही खड़ा था, उसे तो आसानी थी, परन्तु शेष तीन द्वार से हट कर खड़े थे। इतनी साँस नहीं थी कि द्वार तक पहुँच कर बाहर थूक दें। कुछ देर तो तमाखू की पीक मुँह में रोके रहे, परन्तु जब कोई उपाय न देखा तो निगल गये।

इसी समय बसन्त बोला—"अरे सन्तू काका हम तो मरेन।"

"काहे का भा ?"

"तमाखू लाग गै ! जिव घबड़ात है—अरे भइया जरा बैठ जान देओ।" यह कह कर उसने एक के कंधे पर सिर धर दिया।

"अपने बल खड़े रहो जी ! हमारे ऊपर क्यों लदते हो।"

"तमाखू लाग गई भइया।" दइया रे का करन, परान अस निकरत हैं।

"तो काहे इतनी ठूँस गये।"

इसी समय शहर का स्टेशन आगया। बड़ी कठिनता से ठेल ठाल धक्कम-धक्का के पश्चात चारों प्लेटफार्म पर उतरे।

सन्तू भाई बोले—"लाओ हमारी थैली।"

"थैली तो जानों डब्बा माँ गिर पड़ी।" यह कह कर बसन्त प्लेटफार्म पर पड़ी हुई बेञ्च पर पसर गया और बोला—"पानी लाओ थोड़ा।"

(३)

जब बसन्त का चित्त कुछ ठीक हुआ तो चारों स्टेशन के बाहर आये। सन्तू बोला, "बड़ा नुकसान हो गया। थैली चली गई।"

"उसमें क्या क्या हता ?"

"पीतल की चुनौटी, सुपारी, सरौता और तमाखू।"

"राम ! राम ! तब तो बड़ा नुकसान हो गया।" बिसनू ने कहा।

उस समय दिन के ढाई बज चुके थे।

चारों व्यक्ति एक धर्मशाला पहुंचे। बिसनू का पैर जख्मी था, सन्तू के सिर में गोला पड़ गया था, मंगल की कोख दर्द कर रही थी। चारों लेट रहे।

एक घंटे पश्चात चारों उठे। बसन्त दौड़ कर दो आने की बर्फी ले आया। उसमें भाँग मिलाकर उसने स्वयं खाई और अपने साथियों को भी खिलाई। उसके पश्चात चारों शौच से निवृत्त हुए।

बसन्त ने पूछा—'खाना-पीना तो मेले से लौट कर होगा।"

"हाँ मुदा ई पूड़ी कहाँ रक्खें।" चारों अपने अपने घर से पूड़ी बाँध कर लाये थे।

"जमादार से पूछो।"

बसन्त जमादार को बुला कर उससे बोला—"भइया, हमारे पास पूड़ी बँधी हैं घर से लाये हैं अब मेला देखने जारहे हैं तो यह पूड़ी कहाँ रक्खें ?"

"हम क्या बतावें। साथ क्यों नहीं रखते गङ्गा जी तो जाओगे वहीं बैठ कर खा लेना।"

जमादार की यह राय चारों को पसन्द आई, अतः चारों अपनी अपनी पूरियाँ बगल में दाबे मेला देखने चले। बिसनू कुछ लँगड़ा कर चल रहा था! मेले में पहुंचे तो बड़ी भीड़ थी। कुछ देर इधर-उधर घूम कर आपस में सलाह की।

"चलो गंगा जी हो आवें, वहाँ पूढ़ी खापी कर लौटेंगे। रावना तौ नौ-दस बजे जलेगा।"

यह सलाह करके चारों गंगा जी पहुंचें। वहाँ चारों ने भोजन किया। इसके बाद चले।

"नसा बड़े जोर है काका।" बसन्त ने कहा।

"हाँ बहुत नसा है, डगर नहीं सूझ परत है।"

"आओ पान तो खा लेओ।"

एक तंबोली की दुकान पर पान खाये और पुनः आगे बढ़े।

थोड़ी दूर आगे बढ़कर सन्तू बोला—"जरा हम लघुसङ्का कर लें। खाय के बाद लघुसंका करा चही।"

"हाँ हो, हमरी हू आदत है।"

अतः एक लम्बी दीवार के पास चारों बैठ गये।

उधर से कुछ सिविक गार्ड जा रहे थे। जैसे ही ये लोग उठे—उन्होंने चारों को थाम लिया।

"तुमने यहाँ पेशाब क्यों किया, चलो कोतवाली।"

"भइया बड़े जोर लाग रहै-माफ करो।"

"यह कुछ नहीं कोतवाली चलो।"

"कुछ पान खाने को लै लेओ, चीफ साहब!"

"अच्छा दो दो रुपये निकालो।"

"ऐसा न करो। आठ-आठ आना लै लेओ।"

"आठ-आठ आना! हम कुछ न लेंगे, कोतवाली चलो तुम लोग।"

अन्त में चारों ने मिसकौट करके एक-एक रुपया दिया तब छूटे।

सन्तू भाई बोले—"अच्छा मेला देखा। न कुछ खा पाये न ले पाये न मेला देखा और दो-तीन रुपये खर्च हो गये। और हाँ—थैली गई घाते में—तीन रुपये की मालियत वह भी थी।"

मेले पहुंचे! जैसे ही ये लोग पहुंचे रावण को आग लगा दी गई और लोग भड़भड़ाकर चले। सन्तू बोला—"अरे यहाँ खतम होइगा। कुछ देखौ न पायेन।"

"चलौ अबही सिवाला माँ न जरा होई—वहाँ देर माँ जरत है।"

बिसनू बोला—"हमार पाँव तो सूजि आवा भइया—नस पर पैर पड़ा-हम तो चलै नहीं पाइत है।"

"अरे आये हो तो मेला तो देख लेओ।"

"भइया चलै नहीं पाइत है—का करी। अब हम तो जाब धरमसाले—पौढ़ब जायके।"

"तो अकेले चले जइहौ?"

"दिन होत तो चले जातेन, रात माँ भुलाय जाब। हमैं पहुंचाय आओ-फिर चले आओ।"

"तुम चले जाओ बसन्त!"

अरे तो सब जने चलौ, दुई जने रहि जइहैं तो का मजा आई।"

"सिवाला न चलिहौ?"

"अरे होइगा-मेला। थकिगे हन, नसौ बड़े जोर चढ़ा है। चलौ पौढ़न चलिकै।"

यह राय सबको पसन्द आई और चारों धर्मशाला चले आये।

दूसरे दिन सबेरे की गाड़ी से चारों गाँव पहुँचे। सन्तू बिसनू से बोला—"अब जो कबहूँ तुम हमसे मेला देखन का कइहौ तो फौजदारी होइ जाई यौ जाने रहियो।

मुंशी जी की दीवाली

लाला बनारसीदास श्रीवास्तव को दीपावली त्योहार से एक प्रकार की चिढ़सी थी। उनकी चिढ़ का कारण था दीपावली का जुआ। दीपावली पर लोग जूआ खेलते हैं। इस कारण बनारसीदास को दीपावली से चिढ़ थी। वे कहा करते—"न जाने इस त्योहार का ईजाद करने वाला कौन नामाक़ूल था!" इस बात पर उनसे लोगों ने बहस भी की, लड़ाई-झगड़ा भी किया, उन्हें समझाया भी, परन्तु लाला बनारसी दास ऐसी खोपड़ी के आदमी थे कि उनकी समझ में कोई बात न आई। वह अपना मत इस प्रकार प्रगट करते—"यह त्योहार रामचन्द्र जी के अजुध्या (अयोध्या) लौटने पर उनकी आमद (आगमन) की खुशी में मनाया गया था। अजुध्या शहर सजाया गया था, रोशनी की गई थी, लोगों ने खूब जश्न किये थे। असली बात तो यह है, मगर किसी नामाक़ूल ने इसमें जुआ घुसेड़ दिया—बस, उसी दिन से यह त्योहार खराब हो गया।"

कार्तिक बदी दशमी का दिन था। लाला बनारसीदास कचहरी से

वापस आकर अपने मकान के चबूतरे पर हुक्का लिए बैठे थे। वह एक वकील के मुहर्रिर (क्लर्क) थे। इसी समय पड़ोस के दो-तीन व्यक्ति आकर उनके पास बैठ गये क्योंकि आसपास के दस-बारह घरों की बैठक इसी चबूतरे पर लगती थी। एक ने पूछा—"इस साल पोताई-वोताई न कराओगे क्या ?"

"इस साल रंग-वंग बड़ा मँहगा है। खाली दरवाजा पोतवा लेंगे बस ! पोताई के रंग सिसकोलिन का जो डब्बा पन्द्रह आने का आता था उसके दाम छः रुपये हैं।"

"अजी सिसकोलिन को गोली मारिये—अपना देशी रंग पोताइए—क्या सदा सिसकोलिन ही चलता था ?"

"देखो कल इतवार है। एक राज को बुलवाया है—अगर आ गया तो उससे सलाह करेंगे।"

"तूतिया से पोताइये !" दूसरा बोला।

"तूतिया क्या सस्ता होगा ? हुंह।" लाला ने कहा।

"सस्ती तो खैर कोई चीज नहीं है मगर सिसकोलिन से सस्ता पड़ेगा।"

"देखो जो होनहार होगा हो जायगा।"

कुछ देर नीरवता छाई रही। सहसा एक व्यक्ति बोल उठा—"मुन्शी जी इस साल जुआ आप भी खेलिए !"

"मैं और जुआ ! क्या गधेपन की बात करते हो। तुम जानते हो कि इस जूए की वजह से ही मुझे इस त्योहार से चिढ़ है।"

"सो तो मालूम है, मगर इस इरादे से खेलिए कि जितना रुपया आप जीतेंगे वह सब बंगाल फण्ड में भेज देंगे।"

"जी नहीं ! मैं ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ जो बंगाल फण्ड के लिए ऐसा काम करूँ जिससे कि मैं सख्त खिलाफ रहता हूँ।"

"आप में देश-भक्ति का माद्दा बिलकुल नहीं है। देखिये बंगाल

फण्ड के लिए भले-भले घर की लड़कियों ने नाच दिखाकर रुपया इकट्ठा किया।"

"किया होगा—लेकिन मुझे नही करना है।"

"नाम हो जायगा आपका कि अमुक सज्जन ने केवल बंगाल फण्ड में रुपया देने के लिए अपने सिद्धान्त के विरुद्ध जुआ खेला।" तीसरे व्यक्ति ने कहा।

"लेकिन हम जीत ही जायेंगे इसकी जमानत कौन भकुआ करेगा?" मुन्शी जी धूआँ छोड़ कर बोले।

"जमानत तो हम नहीं कर सकते परन्तु इतना कह सकते हैं कि आप जीतेंगे अवश्य! पहले-पहल खेलने वाले सदैव जीतते हैं। क्यों भई; रूपनारायण?"

रूपनारायण बोला—"हाँ बात तो ऐसी ही है।"

"खैर हम चाहे जीतें चाहे हारें, मगर हम जुआ नहीं खेल सकते। यह बात तय है।"

"बस यही आप में ऐब है कि आप किसी की बात नहीं मानते।"

"जी हाँ। औंधी बात कैसे मान लूँ। कोई ढंग की बात कहो तो मान भी लूँ। अच्छा अब जरा फारिग हो लें।"

यह कह कर मुन्शी जी हुक्का उठा कर अन्दर चले गये। उनके अन्दर जाते ही ये तीनों व्यक्ति आपस में बातें करने लगे। रूपनारायण बोला—"यार महेश इस साल मुन्शी जी को जूआ न खेलाया तो कुछ न किया।"

"भई मुन्शीजी खेलें-वेलेंगे नहीं, कोशिश बेकार है। क्यों श्याम लाल?"

श्यामलाल बोला—"हाँ मुश्किल है। जूए से उन्हें सख्त नफरत है।"

"बंगाल फण्ड के नाम पर तैयार हो जायें तो कोई आश्चर्य भी नहीं। इतना तो कहते ही थे कि जीतने की जमानत कौन करेगा।"

रूपनारायण बोला।

"तो तुम जमानत कर क्यों नहीं लेते—देखो खेलते हैं या नहीं।" श्यामलाल ने कहा।

"अगर तैयार हो गये तो हम तो मुसीबत में घिर जायेंगे।"

"अजी कैसी मुसीबत! जीत गये तब तो कुछ कहना ही नहीं—हार गये तो तुम से क्या लेंगे। जूए की भी कोई जमानत होती है।"

"अदालती आदमी हैं, इससे डर लगता है। अच्छा सोचेंगे!"

(२)

धनतेरस का दिन था। रूपनारायण, महेश तथा श्यामलाल ने आवाज दी—,'मुन्शी जी, ओ मुन्शी जी!" मुन्शी मानों कुएँ के अन्दर से बोले—"कौन है!"

"कहां है आप? जरा बाहर तो आइये!"

कुछ देर बाद मुन्शी जी बाहर निकले—एक अँगोछा पहने हुए—शरीर धूल-धूसरित! बोले—"क्या है?"

"अरे! यह आपका हुलिया क्यों बिगड़ा हुआ है क्या कुआं खोद रहे थे?"

"कमरे की सफाई कर रहा था।"

"सफाई! कैसी सफाई?" श्यामलाल ने पूछा।

"गँवार ही रहे! सफाई कैसी होती है?"

"तो क्या कमरा पोत रहे थे?"

"कमरा तो पुत गया—उसमें असबाब लगा रहे थे।"

"असबाब में कुछ गर्दो-गुबार के बोरे भी हैं क्या?"

"अजीब नामाकूल हो। असबाब में गर्द भरी हुई होती है कि नहीं। उसे झाड़ पोंछ कर रख रहे थे।"

"खैर! लेकिन यह समय आपने अच्छा चुना। आज धनतेरस है—बाजार नहीं चलोगे?"

"धनतेरस है ! हाँ ! हमें खयाल ही नहीं था। लेकिन हमें तो कुछ खरीदना है नहीं।"

"वाह सगुन नहीं करोगे—चलो एक आध कटोरी-वटोरी ही खरीद लाओ।"

"अब ऐसे कैसे चलें—नहा लेते तो चलते।"

"तो झट-पट नहा डालो। हम लोग बैठे हैं।"

"अच्छा तो बैठो—अभी आये पन्द्रह मिनट में।"

यह कहकर मुन्शी जी पुनः अन्दर चले गये।

रूपनारायण बोला—"हमें तो मुन्शी जी को इस साल जुआ खेलाना है।"

"यह अजब सनक सवार है तुम्हें।"

"हाँ फिर सनक ही तो है।"

"हम पाँच-पाँच रुपये की शर्त बदते है—मुंशी जी जुआ कभी नहीं खेलेंगे।"

"अच्छा यही सही ! शर्त पक्की हो गई।"

ये लोग यही वार्तालाप करते रहे। बीस मिनिट में मुंशी जी बाहर आये। साथ में उनका सप्तवर्षीय पुत्र भी था। कुछ दूर चलने पर रूपनारायण बोला—"संसार में परोपकार बहुत बड़ी चीज है। क्यों भई महेश ?"

"बेशक ! परोपकाराय नरस्य जीवनम्, परोपकार के लिए ही मनुष्य का जीवन होता है।"

"परोपकार के लिए समय-समय पर लोगों ने बड़े-बड़े नीच कर्म भी किये हैं।"

"जरूर किये होंगे।" श्यामलाल बोला।

"हमारा इरादा इस साल जुआ खेलने का नहीं था। तय कर लिया था कि बिलकुल नहीं खेलेंगे। लेकिन केवल बंगाल फण्ड के कारण हमें

अपना इरादा बदलना पड़ा! और देख लेना हम शर्तिया जीतेंगे। परोप-कार के लिए हम खेलें और हार जाँय—यह नहीं हो सकता। आखिर जिनके लिए हम खेलेंगे उनका भाग्य भी तो जोर मारेगा।"

"उनका भाग्य तो खत्म हो चुका। उनका भाग्य कुछ होता तो उन पर यह मुसीबत ही क्यों आती।" मुंशी जी बोले।

"यह बात तो नहीं है मुंशी जी। लोग लाखों रुपये की सहायता दे रहे हैं। अनेक फण्ड खुल गये हैं। यदि उनका भाग्य नहीं था तो यह सहायता क्यों मिल रही है?"

"बिल्कुल ठीक कहते हो।" श्यामलाल ने कहा। मुंशी जी मौन रहे। इसी प्रकार का वार्तालाप करते हुए सब लोग ठठेरी बाजार पहुंच गये। भीड़ बहुत थी। मुंशी जी बोले—"बड़ी भीड़ है। ऐसे में क्या खरीद होगी। दूकानदार मनमाने दाम ले लेगा।"

"क्या लेना है?" महेश ने पूछा।

"और सुनो! वहाँ से तो जबरदस्ती साथ ले आये और अब यहाँ पूछते हो क्या लेना है? एक छोटा-सा गिलास ले लेंगे मुनुवाँ के लिए।

"तब फिर काहे को चिन्ता करते हो। आना-दो आना ज्यादा-कम की बात है।"

"सो तो हई है—बात कहो।"

"तो ऐसी वाहियात बात आप कहते ही क्यों हैं?" इतना सुनते ही मुंशी जी बिगड़ गये, बोले—"देखो जी, तुम्हारे कहने से हम चले आयें-साथ लाकर कहते हो वाहियात बात करते हो। अभी हम लौट जाँय तो क्या हो?"

"ऐसा गजब न कीजिएगा—ये दूकानें आपके भरोसे ही सजाई गई हैं—आप लौट जायँगे तो इन बेचारों का तो दिवाला ही पिट जायगा?"

बड़ी कठिनता से भीड़ में घुसकर मुंशी जी ने एक छोटा सा गिलास खरीदा—अन्य साथियों ने भी यथा रुचि कुछ खरीदा।

मुंशी जी बोले—"बस टठेरी बाजार का मेला हो गया—अब घर लौट चलो।"

लौटते समय रूपनारायण मुंशी जी से बोला—"तो मुंशी जी इस साल खेलने की बात तय रही।"

"वाही हो!"

"अरे बंगालवालों पर कुछ तो दया करो।"

"जिताने की जमानत करो तो सोचें।"

"अच्छा करते हैं—तुम भी न क्या याद करोगे। बङ्गाल की सहायता के लिए हम यह जोखिम भी उठाने को तैयार हैं।"

महेश बोला—"तो मुंशी जी आप भी तैयार हो जाइये। अब क्या डर है?"

"मुंशी जी बोले—"देखो सोचेंगे।"

"सोचना वोचना कुछ नहीं। अब आप न खेलेंगे तो झगड़ा होगा। मैं इतनी बड़ी जोखिम उठाने को तैयार हो गया और आप जरा-सी बात नहीं मानते।" रूपनारायण ने कुछ बिगड़ कर कहा।

"अच्छा-अच्छा देखा जायगा।" यह कहकर मुंशी जी मौन हो गये।

(३)

अन्त को रूपनारायण तथा उनके साथियों ने मुंशी जी को तैयार कर ही लिया। मुंशी जी बोले—"अच्छा एक काम कर सकते हैं। खेलना तुम, रुपया हमारा रहा। हम खुद न खेलेंगे।"

"रूपनारायण बोला—"अब यह पख न लगाओ।"

"बस इतना कर सकते हैं। खेलना हमें आता भी नहीं—तुम जानते ही हो।"

"अच्छा खैर यों ही सही।"

दीपावली के दिन पूजन-भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रूप-नारायण तथा उनके साथी मुंशी जी के यहाँ पहुँचे। मुंशी जी को आवाज दी। मुंशी जी बाहर आये। रूपनारायण बोला—"चलिए!"

'कहाँ।"

"अब ऐसी बातें करोगे? सब तय हो चुका है। अब टालमटूल करोगे तो झगड़ा हो जायगा।"

मुंशी जी मुनुवाँ की माता के पास जाकर बोले—"मुनुवाँ की मां—एक पचीस रुपये तो देना।"

"पचीस रुपये! अब रात को रुपये क्या होंगे?"

"ऐसे ही! काम है!"

"क्या काम है—कुछ बताओगे भी?"

"आज जरा दाँव लगायेंगे।"

"जुआ खेलोगे! अच्छा! अभी तक तो जुए के नाम से चिढ़ते रहे—अब आज जुआ खेलोगे?"

"तुम समझी नहीं। हम खुद थोड़े ही खेलेंगे—खेलवायेंगे।"

"खेलवाओगे! रुपया तुम खर्च करो और खेले कोई दूसरा! सठिया गये हो क्या।"

'ओहो! तुम पूरी बात तो समझी नहीं और बकना शुरू कर दिया।"

"मैं सब समझती हूं। अब तुम्हारे बिगड़ने के लच्छन लगे हैं।"

"पहले पूरी बात तो सुन लो। वह जो बङ्गाल है न बङ्गाल! वहाँ आदमी भूखों मर रहे हैं।"

"हाँ वहाँ आदमी भूखों मर रहे हैं, यहां तुमको जुआ खेलने का शौक चर्राया है।"

"इलम कसम दादा कहा करते थे कि औरत की जात नाकिसउल अक्ल (मन्दबुद्धि) होती है, वह बात आज साबित हो गई। इन्सान

का फर्ज होता है कि पहले पूरी बात सुन ले तब राय कायम करे। तुम पहले से हीं फैसला किये बैठी हो। इस फैसले को अदालती जबान में यकतरफा फैसला कहते हैं और यकतरफा फैसला हमेशा नाकिस होता है।''

हाँ हम तो बेअकल हुई हैं पर तुम मर्द तो बड़े अकलवाले हो। जिस काम को अभी तक बुरा समझते रहे उस काम को अब अच्छा समझने लगे—और ऐसे बुरे समय में—बलिहारी है इस बुद्धि की।''

मुंशी जी दाँत किटकिटाकर बोले—''जी चाहता है अपना सिर पीट लूँ! अरी भलीमानस पहले पूरी बात तो सुन ले। फिर चाहे गालियां दे लेना। बंगाल में आदमी भूखे मर रहे हैं। सो···।''

''सो तुम यहां जुआ खेलोगे। यह कौन तुक है?''

''ओहो! मुझे बोलने तो दे भगवान! सो उनके लिए सब लोग सहायता कर रहे हैं—लाखों रुपये—लाखों क्या बल्कि हजारों समझो।'

''लाख ज्यादा होते हैं या हजार?''

''तुम तो वकीलों की तरह जिरह करती हो। एक बात मुँह से निकल गई। क्योंकि तुमने दिमाग खराब कर दिया। हाँ तो—लाखों रुपये से मदद कर रहे हैं। हमने सोचा कि चलो इस साल उनके नाम पर दाँव लगा दें— जीत गये तो वह रुपया हम भी उनकी मदद के लिए भेज देंगे—नाम हो जायगा।''

''और जो हार गये?''

''हार नहीं सकते—एक दोस्त ने जमानत कर ली है।''

''यह तो आज नई बात सुनी। जुए में कोई हारे नहीं जीत ही जाय—यह पहले तो कभी सुना नहीं था।''

''पहले तो बहुत-सी बातें नहीं सुनी थीं—आजकल जैसी लड़ाई हो रही है वैसी कभी सुनी थी? ढ़ाई सेर के गेहूँ सुने थे? मैं ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ—रात-दिन अदालत का काम करता हूँ—यह जानती

हो ? इसलिए मैंने पहले ही जमानत करा ली है। समझीं—जमानत ! जमानत से आदमी बँध जाता है।"

"जुए की जमानत तो आज ही सुनी।"

"फिर वही बेवकूफी की बात ! सुनी का लफ़्ज मेरे सामने मत कहो। सुनने को तो अभी न जाने क्या-क्या सुनोगी। किसी दिन कच-हरी चलकर सुनो—।"

"रहने दो—कुछ तुमने सुन-सुनकर कूड़ा किया—अब मैं रह गई हूँ, सो मुझे बख्शे रहो।"

"अच्छा तो रुपये निकाल दो।"

पत्नी ने मुंह फुलाकर रुपये दे दिये।

बाहर आये तो रूपनारायण बोला—"बड़ी देर लगाई ?"

"अरे भई रुपये भी तो लेने थे ?"

"तो क्या गड़े हुए खोदने पड़े ?"

"मुंशियाइन से, हाथ-पैर जोड़कर, लाये हैं।" महेश ने कहा।

"चलो—बहुत बको नहीं।" मुंशी जी ने चलते हुए कहा।

(४)

मुंशी जी अपने साथियों सहित एक फड़ पर पहुँचे। रूपनारायण खेलने लगे। दो घन्टे खेलने के बाद रूपनारायण सौ रुपये के लगभग जीते। मुंशी जी मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए कि अच्छी रकम हाथ लगी। सोचने लगे—"पचास रुपये बंगाल भेजेंगे—पचास रुपये मुनुवाँ की माँ को दे देंगे—प्रसन्न हो जायगी।" रूपनारायण से पूछा—"क्या इरादे हैं ?" और खेला जाय ? इस समय दाँव अच्छा आ रहा है ?"

"तो खेले जाओ ?"

खेल जारी रहा। आध घन्टे पश्चात डेढ़ सौ हो गये। मुंशी जी ने सोचा—अब पचहत्तर भेज देंगे। रूपनारायण ने मुंशी जी की तरफ देखा। मुंशी जी बोले—"खेले जाओ।"

एक घन्टे पश्चात दो सौ हुए। मुंशी जी ने सोचा—"अब पूरे सौ भेज देंगे।" रूपनारायण ने पुनः मुंशी जी की ओर देखा। मुंशी जी बोले—"चलने दो! इस वक्त बंगाल वालों की किस्मत लड़ रही है। हारोगे नहीं। रूपनारायण ने मुस्कराकर खेल जारी रक्खा। रात के दो बज गये। अब रूपनारायण पूरे तीन सौ जीत गया। मुंशी जी ने बंगाल फण्ड के लिए पचीस और बढ़ा दिये।

रूपनारायण बोला—"अब बन्द करें।"

मुंशी जी पर लोभ देवता सवारी गाँठ चुके थे। अतः वह बोले—"पूरे चार सौ कर लो।"

रूपनारायण ने खेल जारी रक्खा। आध घन्टे में पचास हार गया। मुंशी जी बोले—"यह पचास लौटाकर बन्द कर देना।"

अब रूपनारायण ने लम्बे दाँव लगाने आरम्भ किये। परिणाम यह हुआ कि जितने जीते थे वे सब निकल गये। मुंशी जी के पचीस भी चले गये। रूपनारायण बोला—"अब और रुपये लाओ तो खेल हो।"

मुंशी जी ने मानों रोते हुए कहा—"अब आज रहने दो—रात बहुत हो गई, कल देखा जायगा।"

मुंशी जी घर लौटकर आये तो उन्हें दो-तीन दस्त आ गये।

मुंशियाइन ने पूछा—"क्या हार आये?"

"अभी कुछ कहा नहीं जा सकता, कल पता लगेगा।" मुंशी जी ने भरी हुई आवाज में कहा।

दूसरे दिन रूपनारायण ने कहा—"आज खेल होगा!"

"पचीस रुपये से खेलना।"

"तो रुपये लाइये!"

"रुपये! मैं क्यों लाऊँ! तुम निकालो—तुमने कहा था कि हारोगे तो हमारे रुपये दे दोगे।"

"हाँ यदि आप मेरे कहने से उठ आते। मैंने तीन दफा आपसे खेल

बन्द करने को कहा, परन्तु आप यही कहते रहे कि खेलते रहो। ऐसी हालत में मैं हार के लिए जिम्मेदार नहीं हूं।"

"क्या! अब यह बेईमानी करोगे?"

"चार आदमियों से न्याय करा लीजिए।"

रूपनारायण तथा मुंशी जी का झगड़ा होने लगा। झगड़ा सुनकर मुहल्ले के कुछ आदमी जमा हो गये। उनके सामने बात पेश हुई तो उन्होंने कहा—"रूपनारायण ठीक कहता है। आपको इसके कहने पर खेल बन्द करवा देना चाहिए था। इसने जिताने की जमानत की थी सो जिता तो दिया ही था। जीतने के बाद भी आपने फिर इसे खेलने को कहा—बस वहीं से जमानत जप्त होनी शुरू हो गई। आप तो अदालती आदमी हैं। खुद सोच लीजिए।"

सबके कायल करने से मुंशी जी को चुप हो जाना पड़ा। परन्तु बड़ा अफसोस था। तीन सौ का हिसाब लगाते थे तो कलेजे में हूक उठती। मुंशियाइन ने अलग पचास बातें सुनाईं—"हो गई जमानत! कहते थे जमानत करा ली है। इतनी बुद्धि भी नहीं कि जुए की भी कहीं ज़मानत होती है।" मुंशी जी चुप! सांस भी नहीं ले सकते थे।

दीपावली बाद रूपनारायण ने कहा—"अब अगले साल खुद खेलियेगा।"

"तुम्हारा सिर! अब जो मुझसे खेलने को कहेगा उस पर फौजदारी चला दूंगा। बदमाशों ने चंग पर चढ़ाकर मरवा दिया। जो काम कभी न किया था, वह काम करवा दिया और पचीस रुपये की ठोकर दिलवा दी। वही पचीस रुपये घर में खर्च करते तो शान से त्योहार होता। भगवान तुम्हें समझेगा।" यह कहते-कहते मुंशी जी की आँखों में आँसू आ गये। इधर यार लोगों ने खूब अट्टहास किया। अब आजकल मुंशी जी दीपावली के और भी अधिक विरोधी हो गये हैं।

फैसला

गाँव का पटवारी अपनी चौपाल में बस्ता खोले बैठा हुआ था, उसके पास दो-तीन ग्रामीण बैठे थे। इसी समय एक वृद्ध लाठी टेकता हुआ आता दिखाई पड़ा। एक ग्रामीण उसे देख कर बोला नन्दा काका आरहे हैं।

पटवारी ने खतौनी पर से दृष्टि उठा कर देखा। नन्दा को देखकर वह किञ्चित् मुस्कुराया। बगल में रक्खे हुए बीड़ी के बण्डल में से एक बीड़ी निकाल कर सुलगाते हु उसने कहा—"यह नन्दा बड़ा बना हुआ है। ऐसा चालाक आदमी गाँव में दूसरा कोई नहीं है। आने दो, आज देखूंगा कितना चालाक है।"

एक ग्रामीण हंसता हुआ बोला—"नन्दा काका से मुंशी जी भी कच्ची खा गये।"

"कच्ची खा गये! मुंशी जी कच्ची खाने वाले नहीं हैं।" दूसरे ने कहा।

मुंशी जी बोले "हम किसी से कच्ची वच्ची नहीं खाते । हमें कोई बेचारा क्या कच्ची खिलायगा ।"

इसी समय नन्दा आ पहुँचा और बोला—"मुंशी जी सलाम ।" मुंशी जी बीड़ी का धुंआ छोड़ते हुए बोले—"सलाम, कहो किधर भूल पड़े ।"

नन्दा बैठते हुए बोला—"अब ऐसी कहोगे, भूल पड़े ।"

"झूठ कहते हैं ।"

"मालिक हो, चाहे जो कहो ।"

"हमारे पास तो तुम फटकते भी नहीं ।"

"फटकें क्या मुंसी जी, अब चला फिरा नहीं जाता । लड़का सब काम संभाले हुए है; हम तो घर में बैठे रहते हैं । क्यों बबुआ । झूठ तो नहीं कहता ?" अन्तिम वाक्य नन्दा ने वहाँ बैठे हुए एक ग्रामीण की ओर देखकर कहा ।

बबुआ उत्साह हीन स्वर से बोला—"हाँ काका ऐसी ही बात है ।"

"मुंशी जी समझते हैं कि हमारे पास नहीं आता—मैं जाता ही कहाँ हूँ ।"

"अच्छा कहो, इस समय कैसे आये ?" पटवारी ने पूछा ।

"ऐसे ही आपके दर्शन करने चले आये । बहुत दिनों से भेंट-मुलाकात नहीं हुई थी । हमने कहा आज हो आवें-और कुछ काम भी था-झूंठ क्यों बोलें ।"

"तो यह कहो काम के ही लिये आये हो, भेंट-मुलाकात तो सब बातें हैं ।"

"यह बात नहीं है मुंशी जी; काम के लिए तो लड़के को भी भेज सकता था । हमने सोचा इसी बहाने मुलाकात भी कर आयेंगे ।"

"अच्छा कहो, क्या कहते हो ?"

"हमने सुना है नया कानून आगया है ।"

"हाँ आ गया है।"

"उसमें क्या क्या है।"

"है तो बहुत कुछ! तुम्हें जो जरूरत हो सो कहो।"

"जो हमारे मतलब की समझो सो बता देओ।"

"सब कुछ तुम्हीं लोगों के मतलब की है, कुछ हमारे की थोड़ा ही है।"

"सुनते हैं, किसान के खेत की मेड़ पर जो दरख्त होंगे वह किसान को मिलेंगे। यह ठीक है।"

"ठीक भी है, नहीं भी।"

"यह कैसा ?"

"देखो नन्दा, तुम बड़े सयाने हो। सब बातें भेंट मुलाकात में ही जान लेना चाहते हो, न नजर न नियाज।"

"नजर-नियाज भी मिलेगी, घबड़ाते क्यों हो।"

"तो जब नजर-नियाज मिलेगी तभी बतादेंगे।"

"ऐसा कहोगे ?"

"क्या करें, तुमसे कभी कुछ मिलता है ?"

"अरे सरकार आप हाकिम हैं आप की बदौलत हमारी रोटियाँ चलती हैं आपको हम देने लायक कहाँ हैं।"

"ये बातें किसी और को पढ़ाओ जाकर, हमसे सीधी तरह बात करो—समझे ? पहले दो रुपये निकाल कर धरो, पीछे कुछ पूछो।"

अन्य लोगों की ओर देख कर मुंशी जी बोले—"तुम लोग क्यों बैठे हो ? जाओ अपना अपना काम देखो।"

अन्य सब लोग उठ कर चल दिये।

नन्दा बोला—"हमारे ऊपर आपकी कुछ नाराजी रहती है।"

"हम नाराज-वाराज किसी से नहीं रहते। यह सब व्यर्थ की बातें हैं।"

नन्दा ने टेंट से निकाल कर दो रुपये मुन्शी जी के सामने रक्खे ।

मुंशी जी रुपये उठाते हुए बोले—"हाँ, अब पूछो, क्या पूछते हो ।"

"हमारे खेत की मेड़ पर दो पेड़ सीसम के हैं—उन्हीं की बाबत पूछना है।"

"वे अब तुम्हारे हैं, जमींदार का उन पर कुछ अख्तयार नहीं है ।"

"हूँ" कहकर नन्दा ने सिर झुका लिया और कुछ सोचने लगा। पटवारी कुछ मुस्करा कर बोला—"काहे, चुप क्यों हो गये ? हमें सब हाल मालूम है, अब आनन्द पूर्वक घर पर बैठो, जमीदार कुछ नहीं कर सकता ।"

जो नालिस करें कि हमारा और इनका सौदा साल भर पहले तय हो चुका है तो ?"

"उसकी कोई लिखा पढ़ी तो है नहीं, जबानी बातचीत से क्या हो सकता है ।"

"सायत गवाह-साखी गुजारें ।"

"सो अब कुछ नहीं हो सकता ।"

नन्दा कुछ देर तक चुप बैठा रहा तत्पश्चात् बोला—"अच्छा तो चलता हूं मुंशी जी ।"

"अच्छा ! सीसम कटवाना तो थोड़ी लकड़ी हमें भी देना ।"

"हाँ ! जितनी चाहना ले लेना ।"

(२)

नन्दा अहीर, गाँव के अहीरों में सबसे अधिक सम्पन्न था। दो जोड़ी बैल, तीन भैंसें, चार पाँच गाय रक्खे हुए था। मुख्य व्यवसाय किसानी था। नन्दा का एक जवान पुत्र था, वयस २४, २५ वर्ष के लगभग थी। खूब हृष्ट पुष्ट और कसरती था। नन्दा घर लौट कर आया तो उसका पुत्र कालिका उसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। कालिका ने पूछा—"मुंशी जी ने क्या बताया ?"

"मुंशी जी कहते हैं कि जमींदार का कोई हक नहीं है, जमींदार कुछ नहीं कर सकता।"

"अब तो विश्वास हुआ?"

"हाँ—विश्वास क्यों न होगा। पर—।"

"पर क्या? "कालिका ने भृकुटी चढ़ा कर पूछा।

"हम जमींदार को जबान दे चुके हैं।"

"कौन! जबान-वबान कुछ नहीं। दरख्त हमारे वह कुछ नहीं कर सकते।"

"बेटा! जरा यह तो सोचो। परसाल वह चाहते तो कटवा लेते। हमारे कहने से ही उन्होंने छोड़ दिये। हमने उनसे यह कहा था कि आप हमें ये दरख्त देओ—हम आपको इनके जो दाम ठीक समझे जायेंगे दे देंगे। हमारे ऐसा कहने से उन्होंने दरख्त नहीं कटाये, छोड़ दिए। तो अब हमें दाम तो देने ही चाहिएं।"

"कैसे दाम? जब चीज हमारी है तो वह दाम लेने वाले कौन होते हैं।"

"तुम तो खरीद चुके और दाम देने कह चुके।"

"मैंने तो नहीं कहा।"

"तुमने न कहा मैंने कहा, बात तो एक ही है।" नन्दा कुछ झुंझला कर बोला—"उन्होंने हमारी बात पर विश्वास करके दरख्त छोड़ दिए तो अब हमें ऐसी दगाबाजी नहीं करनी चाहिए।"

"ऐसे धर्मराज न बनो, धर्मराज बनने से काम नहीं चलेगा। यह हैं जमींदार, रात दिन किसानों का खून चूसते हैं। इनके साथ धर्मराज बने गुजारा नहीं होगा।"

"सभी एक से थोड़े ही हैं और फिर चाहे जैसे हों—हमारे तो मालिक हैं, अन्नदाता हैं।"

"अरे हम उनके खुद मालिक और अन्नदाता हैं। पैदा तो हमीं

करते हैं—और वह बैठे खाते हैं और हमीं पर रुआब झाड़ते हैं जमींदारों की हस्ती तो मिटा देनी चाहिए। उस दिन का लिक्चर सुना था।"

"वही सुन सुन कर तो तुम लोगों के ख्याल बिगड़ गए—पुरानी परिपाटी छोड़ दे रहे हो।"

हमें पुरानी परिपाटी नहीं चाहिए—उसी परिपाटी ने हमारी यह दुर्दशा कर दी।!'

नन्दा चुप हो गया। वह इस समय बड़ी उलझन में था। उसका अन्तःकरण तो कह रहा था कि जमींदार को वृक्षों का मूल्य मिलना चाहिए। परन्तु लड़के के विरोध करने से वह अन्तकरण की आज्ञा मानने में असमर्थ था।

"आज उन्हें जवाब देना है, उनका आदमी बुलाने आता हो होगा।" नन्दा बोला।

"तो जवाब दे देना कि अब दाम कैसे—अब तो वह हमारे हैं।"

"मेरे से तो मरे जी ऐसा नहीं कहा जायगा।"

"तो तुम न जाना—बैठो यहीं। हम बात कर आयंगे।

"बैठने पावेंगे तब तो—जमींदार तो हमीं को बुलावेगा। बात तो हमीं से हुई थी, तुमसे तो हुई थी नहीं।"

"खैर, जब बुलवायेंगे तो देखा जायगा—अभी तो हमीं जायंगे।"

नन्दा चुप हो गया। कुछ क्षण चुप रह कर बोला—"बुढ़ापे में मुंह काला कराओगे और क्या।"

कालिका डपट कर बोला—"हमारी चीज और हमीं इसके दाम दें। यह अन्धेर! ऊपर से कहते हो काला मुंह कराओगे। ऐसे बहुत धन बढ़ा है तो किसी गरीब को दे देओ, जमींदार को दिए क्या होगा।"

नन्दा अपनी घुटी चाँद पर हाथ फेरता हुआ बोला—"अच्छा भाई, करो जैसा मन में आवे। अब और क्या कहें तुम मानोगे थोड़े ही।"

जबरदस्ती मान लें'

इसी समय जमींदार का गुड़ैत आ गया और नन्दा से बोला—"ठाकुर बुला रहे हैं।"

नन्दा के बोलने के पूर्व ही कालिका बोल उठा—"चलो, हम चलते हैं।"

"चलो, तुम्हीं चलो।" गुड़ैत बोला।

कालिका ने झटपट कुर्ता गले में डाला और टोपी हाथ में लिए चौपाल के चबूतरे पर से उतरता हुआ बोला—"चलो।" गुड़ैत कालिका को साथ लेकर चला गया। कालिका के जाने के पश्चात कुछ देर तक नन्दा बैठा सोचता रहा तत्पश्चात अपनी लठिया लेकर यह कहता हुआ उठा—'यह लड़का उपद्रव मचवायगा।"

(३)

ठाकुर साहब अपने कमरे में विराजमान थे। उनके पास ही उनका पुत्र बैठा था—वयस २२, २३ के लगभग थी। इन्टरमीजिएट पास करके उसने पढ़ना छोड़ दिया था, और जमींदारी का काम देखना आरम्भ किया था।

कालिका से ठाकुर साहब बोले "भाई वह शीशम के रुपये अब मिल जाने चाहिए"। पिछली फसल में नन्दा ने कहा था कि अगली फसल में जरूर मिल जायंगे।"

कालिका बोला—"वह दरख्त तो हमारे हैं मालिक!"

"क्या मतलब? "ठाकुर साहब ने पूछा।

"नया कानून जो बना है उसके हिसाब से दरख्त हमारे हैं।"

"मगर अब तुम्हारे हुए हैं साल भर पहले जब तुमने लिये थे तब तो तुम्हारे नहीं थे। हम कटवा रहे थे; तब तुम्हारे बाप ने यह कह कर हम दाम दे देंगे—ले लिये थे। हमने जो यह रियायत की कि दाम नगद नहीं लिये उसका यह बदला है?"

"बदला-बदला कुछ नहीं है सरकार न्याय की बात है।" कालिका ने कहा।

"न्याय की बात तो यह है कि जब तुम दरख्त खरीद चुके तो तुम्हें दाम देना चाहिए।" जमींदार के पास बैठे हुए गाँव के एक वृद्ध सज्जन ने कहा।"

"यह तो ठीक है दादा! पर बप्पा ने खरीदे थे तो गलती की थी। वह चीज तो जब भी हमारी ही थी, हमारी न होती तो सरकार हमें दिलाती ही काहे को।"

ठाकुर साहब के माथे पर बल पड़ गये। वह बिगड़ कर बोले—"हमारे सामने बहुत कानून न छौको। समझे! बड़े बालिस्टर बन के आये। जब खरीदी थी तब चीज हमारी थी। कानून कब बना है। हमारा सौदा कानून बनने के पहले हो चुका था और तुम क्यों आये? तुम्हें हमने नहीं बुलवाया। हमारी बात नन्दा से हुई थी उसी को जाकर भेजो। रुपये दे तो दे, नहीं हम दरख्त कटा लेंगे।"

"आप जबरदस्त हैं चाहे जो कुछ करें।" इतना कह कर कालिका उठा और अकड़ता हुआ चल दिया। डेरे के बाहर आकर कुछ उच्च स्वर से बोला—"जब कटायेंगे तब देखेंगे, लहासें गिर जांयगी दिल्लगी नहीं है।

जमींदार साहब ने कालिका की बात सुनी। पास बैठे हुए वृद्ध सज्जन से वह बोले—"सुना? इन लोगों के दिमाग तो देखो।" वृद्ध सज्जन बोले "बड़ा बुरा समय आ गया है सरकार कुछ कहते नहीं बनता। कांग्रेस का बल पाये हुए हैं-इसी से यह दशा है।"

"सो जब खोपड़ी पर पड़ेंगे तब कांग्रेस बचाने नहीं आवेगी। मैं और तरह का आदमी हूं—कोई करम बाकी न रक्खूंगा। "जमींदार साहब का पुत्र बोला—"ले भी जाने दीजिए दो दरख्त, कौन बड़ी बात है।"

"कैसे ले जाने दें। पचास रुपये की रकम है।"

"चाहे जितने के हों, अब तो वे उनके हैं।"

"लेकिन उन्होंने कानून पास होने के पहले ही खरीद लिये थे—।"

"लेकिन उसकी कोई लिखा-पढ़ी तो है नहीं !"

"न हो लिखा-पढ़ी, जबान भी तो कोई चीज होती है।"

"कानून तो इसमें कुछ कर नहीं सकता।"

"अरे हम तो कर सकते हैं। अब ऐसी बात बात में कानून देखने लगें तो जमीदारी कर चुके।" वृद्ध सज्जन को सम्बोधन करके ठाकुर साहब बोले—"यह दशा है इन पढ़े लिखों की। यह भला क्या जमींदारी करेंगे। इन्हें तो कानून ही खा जायगा।"

इसी समय नन्दा डेरे में प्रविष्ट हुआ उसके पीछे कालिका भी था। नन्दा को देखते ही ठाकुर साहब बोले—"रुपये लाये नन्दा ? आज रुपया दाखिल कर दो, नहीं कल पेड़ कट जायेंगे।"

नन्दा बैठते हुए बोला—"रुपया आपका गले बराबर है! आप हमारे मालिक हैं, अन्नदाता हैं, आपसे बेईमानी नहीं करूंगा। पर यह लड़का सरकार नहीं मानता है। इसे किसी तरह समझा लेओ।"

"इसे समझाने की हमें क्या गरज पड़ी है। हमारी तुमसे बात हुई थी।"

"हाँ ठाकुर ! मैं यह कैसे कह दूं बात नहीं हुई थी। बात बीसो-बिस्वे हुई थी। झूठ नहीं बोलूंगा भगवान को मुंह दिखाना है। सुना बबुआ रुपये लाकर ठाकुर को दे देओ। जो बात हो गई सो हो गई बचन पूरा करो। रामायण में कहा है "प्रान जाय पर बचन न जाई।"

कालिका उत्तेजित स्वर में बोला—"उन पेड़ों से हमें कितना नुकसान पहुँचा है। हमारा १० बिस्वा खेत रद्दी हो गया, पेड़ों की छाया

के मारे उनमें कुछ होता नहीं है। हम बराबर का लगान देते रहे— जब कि पेड़ हमारे नहीं थे, तब हमने इतना नुकसान सहा। इसी मारे न कि मालिकों का फायदा होगा। नहीं, हम उन्हें जमने ही न देते। हमी ने उन्हें पाला-पोसा, जानवरों से बचाये रहे, ठाकुर का कोई आदमी जाता था देखने? अब सरकार ने हमें दिला दिया तो ठाकुर ही गम खाँय। हमने उनके पीछे मेहनत की नुकसान उठाया। ठाकुर को इतनी समाई भी नही है बनते अन्नदाता हैं।"

"बनते क्या—हुई हैं अन्नदाता तुम न मानो हमने तो सदा माना है और मानेंगे।"

ठाकुर साहब का पुत्र धीमे स्वर में पिता से बोला—

"लो जाने दीजिये! उनका हक है।"

"कैसे हक है! खरीद चुके तब हक काहे का।" ठाकुर ने कहा।

कुछ देर तक मौन छाया रहा। चार व्यक्तियों की विचारधारा चल रही थी। दो युवकों की और दो वृद्धों की। वृद्ध (नन्दा) ठाकुर को अपना अन्नदाता समझ रहा था और अपना बचन पूरा करने के लिए तत्पर था। दूसरा वृद्ध (जमीदार) नन्दा को अपनी रियाया समझ कर उससे यह आशा करता था कि वह उनकी आज्ञा चुपचाप मान ले। एक नवजवान (कालिका) जमीदार को अपना शत्रु समझ कर अपने अधिकार के लिये कटने मरने को तैयार था, पिता के बचन का उसके सामने कोई मूल्य ही न था। दूसरा नवजवान (ठाकुर का पुत्र) सोच रहा था कि अब किसानों पर अत्याचार नही होना चाहिए। उनके अधिकार उन्हें मिलने चाहिएँ। अधिकार के सामने उसकी समझ में वचन का कोई मूल्य नहीं था। दोनों वृद्धों की विचार धारा जमींदारों के पक्ष में थी और दोनों नवयुवकों की किसानों के पक्ष में! लड़के वृद्धों को गलती पर समझ रहे थे और वृद्ध लड़कों को। एक ओर लड़का बाप की बात नहीं मान रहा था दूसरी ओर बाप लड़के को

बात नहीं मान रहा था।

कुछ देर सन्नाटा रहने के पश्चात ठाकुर साहब बोले—"क्यों नन्दा क्या कहते हो तुम्हारे ऊपर ही फैसला है जैसा कहो हमें मन्जूर है।"

कालिका बोल उठा—"मैं तो छोटे ठाकुर पर फैसला छोड़ता हूँ—जैसा वह कह दें, मैं मन्जूर कर लूंगा।"

नन्दा—"सरकार मैं तो जो कह चुका हूँ उससे नहीं भागूंगा। बबुआ नहीं देता तो मैं देता हूँ।" यह कह कर नन्दा ने टेंट से पचास रुपये निकाले और ठाकुर के सामने रख दिये। कालिका की भौंहें तन गईं।

ठाकुर बोले—"शाबाश नन्दा तुमने अपना बचन पूरा किया।"

छोटे ठाकुर ने पिता से पूछा-"रुपये आपने पा लिये?"

"हाँ पा लिये!"

"अच्छा तो ये रुपये मुझे दे दीजिए।"

"क्या करोगे?" ठाकुर ने पूछा।

"मुझे जरूरत है।"

"ले लो।"

छोटे ठाकुर ने रुपये उठाकर कालिका की ओर बढ़ाते हुए कहा—"लेओ भाई अपने रुपये। फैसला हो गया।" कालिका हाथ जोड़ कर बोला—"छोटे ठाकुर, आपने इन्साफ किया। बस मैं यही चाहता था। रुपये की क्या बात है आपकी बदौलत कमाते खाते और मौज करते हैं। हुक्म हो तो पचास रुपये आप पर से निछावर करदूं।"

बड़े ठाकुर बोले—"रुपये लौटाना है तो नन्दा को दे दो। इसने अपने वचन का पालन किया, ईमानदार आदमी है।"

"सरकार मैं तो रुपये नहीं लूंगा।" नन्दा बोला।

"तो तुम्हीं ले लो।" छोटे ठाकुर ने कालिका से कहा।

"सरकार मैं तो इन्साफ़ चाहता था सो मिल गया। रुपये जिसके हों

उसे दीजिए।" कालिका बोला।

छोटे ठाकुर बोले—"यह तो बड़ी मुश्किल है। इन रुपयों का क्या हो।"

ठाकुर साहब के पास बैठे हुए वृद्ध सज्जन बोले—"कोई नहीं लेता तो किसी धर्म कार्य में लगा दिए जांय।"

"यह ठीक है। आपने बहुत अच्छी सलाह बताई।" छोटे ठाकुर बोले।

कालिका बोल उठा—"यह बहुत अच्छी बात है।"

छोटे ठाकुर ने रुपये रख लिये! बाद को कालिका की सलाह से वह रुपये छोटे ठाकुर ने कांग्रेस फण्ड में दे दिये। इस प्रकार यह मामला, जो उपद्रव का रूप धारण करने जा रहा था, नन्दा की नेक-नीयती और छोटे ठाकुर की न्याय-प्रियता के कारण इतने सुन्दर ढंग से तय हो गया।

होड़
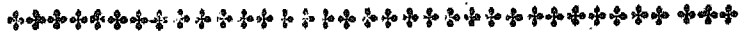
ग्रामोफ़ोन

एक शब्द बिजली की भाँति घर भर में फैल गया। एक अष्ट वर्षीय लड़का और एक द्वादश वर्षीय कन्या चिल्ला उठे—"बाबू जी बाजा लाये।"

"हल्ला मत मचाओ।" कह कर बाबू जी ने ग्रामोफोन तख्त पर रखवाया। दोनों बालक बालिका उसे घेर कर बैठ गये। बालक ने टर्न-टेबिल पर उँगली रख कर उसे घुमाया बाबू जी चिल्ला उठे—"हैं! यह क्या करता है?" बालक ने चट उँगली उठा ली। वह कुछ देर तक पिता की ओर सशंकित नेत्रों से देखकर बोला "इसे छूने से क्या होता है?"

पिता के बोलने के पूर्व ही बालिका बोल उठी—"बिगड़ जाता है, और क्या होता है। यह कह कर बालिका ने गम्भीरता पूर्ण उत्सुकता से बाबू जी के मुँह की ओर देखा मानों वह बाबू जी के मुख से अपनी बात का समर्थन सुनना चाहती है।

बालक बोला—"वाह ! बिगड़ेगा कैसे ? घूमता तो वह हुई है।"

बाबू जी बोल उठे—',ऐसे घुमाने से बिगड़ जायगा।"

"लेओ मैंने तो पहिले ही कह दिया था।" बालिका ने कुछ गर्व तथा बड़प्पन के साथ कहा।

इसी समय बाबू जी ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और पत्नी को वहाँ उपस्थित न पाकर कुछ खिन्न मुख से पूछा—"तुम्हारीं अम्मा कहाँ हैं ?" "बुला लाऊँ ?" कहकर बालक "अम्मा जी !" "अम्मा जी !" पुकारता हुआ एक कमरे के भीतर घुस गया। इधर बाबू जी ने चाबी भर कर सुई लगाई और एक रिकार्ड चढ़ा दिया। रिकार्ड के शब्द घर भर में गूँजने लगे। इसी समय बालक अम्माँ जी का हाथ पकड़े कमरे से निकला। बाबू जी ने मुँह बना कर पूछा—"कहाँ थीं ? घण्टा भर हो गया आये, तुम्हारा पता नहीं।"

बच्चों की माता ग्रामोफोन का स्वागत करने के लिये द्वार पर नहीं मिली—यह बात बाबू जी को अच्छी नहीं लगी। पत्नी ने उत्तर दिया-"जरा कपड़े—वपड़े धर उठा रही थी। बाजा ले ही आये ?"

"तोबा ! बाजे का स्वागत क्या इन्हीं शब्दों में किया जाता है ? जिस वस्तु के लिये साल भर से लालसा लगी हो उसकी प्राप्ति पर केवल इतना कहना कि ले ही आये।" बाबूजी के उत्साह और उमंग पर तुषारपात हो गया। वह बाजे के पास से हट आये और कपड़े उतारने लगे। दोनों बच्चे बाजे के अत्यन्त निकट बैठकर उसे कौतुहल पूर्ण दृष्टि से देखने लगे।

"कितने का मिला ?" पत्नी ने प्रश्न किया।

"जितने का मिला ले आया।" पति ने अन्यमनस्कता पूर्वक उत्तर दिया।

"देखो बाबू जी रज्जू बाजा छूता है।" बालिका ने कहा।

"कहाँ छूते हैं—झूट मूट नाम लगाती है।"

"अच्छा, अभी नहीं छुआ था ?"

यद्यपि पत्नी की उदासीनता ने बाजे के प्रति बाबूजी की दिलचस्पी कुछ कम हो गई थी परन्तु फिर भी बाबू जी बोल उठे—"रज्जू ! छुओ मत बिगड़ जायगा।" इसी समय रिकार्ड समाप्त हुआ। बाबू जी ने लपक कर बाजे को बन्द किया।

पत्नी बोल उठी—"आवाज तो अच्छी है।"

पत्नी के इन शब्दों से बाबू जी की मृत प्राय: दिलचस्पी को चन्द्रोदय सा मिला। वह झट बोल उठे—"सवा सौ रुपये लगे भी तो हैं।"

"रिकार्ड कितने हैं ?

"अभी तो एक दर्जन लाया हूँ। रिकार्डों का क्या धीरे धीरे काफी हो जायंगे।"

रज्जू बोला—"बाबू जी बजाओ।"

"बस अब इस समय नहीं रात को बजायेंगे। रात में अच्छा लगता है।" बच्चो की माता बोली।

"हाँ हाँ रात में बजायेंगे। अभी रहने दो।" बाबू जी ने कहा।

"अम्माँ जी ! मैंने देख लिया है अब मैं बजा लूँगी।"

"मैं भी बजा लूँगा।" रज्जू बोल उठा।

"हाँ तुम बजा लोगे, तोड़ ताड़ के रख दोगे।" बालिका ने मुँह बना कर कहा।

बाबू जी ने बाजा समेट कर एक किनारे रख दिया।

उपर्युक्त बाबू मुकुट बिहारीलाल के पड़ोस में रामचरण दास नामक एक सज्जन रहते थे। यह महाशय मुकुट बिहारी लाल की अपेक्षा कुछ अल्प बयस्क थे। ऊपर से तो इन दोनों पड़ोसियों में सद्-भाव था, परन्तु रामचरण दास के हृदय में मुकुट बिहारीलाल के प्रति कुछ ईर्षा भाव था। रात के नौ बजे थे। रामचरण दास अपनी पत्नी सहित छत पर लेटे थे। इसी समय मुकुट बिहारीलाल के घर में ग्रामो-

फोन बजना प्रारम्भ हुआ। रामचरणदास की पत्नी बोल उठीं—"लख पड़ता है मुकुट बिहारी बाजा लाये हैं।"

रामचरणदास बोले—"लाये होंगे, क्या पता।"

दोनों चुपचाप होकर रिकार्ड सुनने लगे। रिकार्ड समाप्त होने पर रामचरणदास की पत्नी बोली—"कैसा है?"

—"मामूली मालूम होता है आवाज बहुत साफ नहीं है।"

—"आवाज तो साफ़ है।" पत्नी ने कहा।

—"क्या साफ है! आजकल ऐसे ऐसे बाजे बने हैं कि यह मालूम ही नहीं होता कि बाजा बज रहा है। यही मालूम होता है कि गाना बजाना हो रहा है।"

—"हाँ यह बात तो मालूम होती है।"

—"तब इसी से तो कहता हूँ मामूली है।"

—"तुम तो बाजा लाते ही रह गये।"

—"मैं जब लाऊँगा तब बढ़िया लाऊँगा। मामूली बाजा कहो कल ले लाऊँ परन्तु मैं लाना नहीं चाहता। चीज लावे तब बढ़िया लावे घटिया लाने से तो कोई लाभ नहीं।"

—"सुनो, सुनो यह रिकार्ड अच्छा है।"

"क्या अच्छा है? रिकार्ड ऐसे बढ़िया बने हैं कि सुनो तो कहो। कि ये सब सस्ते रिकार्ड हैं बीस बीस आने वाले। बढ़िया रिकार्ड चार चार साढ़े चार चार रुपये के आते हैं।"

—"नीलाम से लाये होंगे।"

—"नीलाम में भला कहीं चीज लाभ से मिलती है। मैं लाऊँगा तो चीज नयी लाऊँगा।"

—"हाँ और क्या, चीज लावे तो नयी लावे, पुरानी चीज किस काम की। इसी प्रकार जब तब दोनों जागते रहे टीका टिप्पणी करते रहे। यद्यपि दोनों को बाजा अच्छा मालूम हो रहा था परन्तु दोनो अपने २

मनोगत भावों को दवा कर लापरवाही दिखा रहे थे। अन्त में बाजा सुनते २ दोनों सो गये। सबेरे चार बजे शहनाई की आवाज सुन कर पहले पत्नी की आँख खुली। उसने जो गौर किया तो मालूम हुआ पड़ोस में वही रात वाला ग्रामोफोन शहनाई अलाप रहा है। इस समय रात के सन्नाटे में शहनाई की आवाज बड़ी भली मालूम हो रही थी। वह ध्यान पूर्वक सुन कर उसका आनन्द लेने लगी।

थोड़ी देर में रामचरणदास की भी आँख खुल गई। उन्होंने पत्नी को जागते देख पूछा—"क्यों जाग रही हो?"

—"क्या कहूँ बाजे ने जगा दिया। इन्होंने मुँह अँधेरे से ही फिर टेंटें लगाई। उधर रात के बारह बजे तक सोने न दिया, अब फिर चार बजे से लग्गा लगा दिया।" पत्नी ने मुँह बना कर कहा।

बाबू रामचरणदास हँस कर बोले—"नया शौक है—पहले कभी बाजा काहे को नसीब हुआ था।"

—"तो ऐसा भी शौक किस काम का कि दिन देखे न रात।" उनसे पत्नी ने कहा और मन ही मन—शहनाई का रिकार्ड एक बार लगावें तो अच्छा।

"ऐसे बाजे से तो वे बाजे भले। सबेरे सबेरे नींद हराम की।" पत्नी से रामचरणदास बोले और मन में सोचा—चाहे जो हो बाजा अवश्य खरीदना चाहिये।

(३)

—"राम! राम! इस बाजे ने तो नाक में दम कर दिया।" कहती रामचरण दास की पत्नी छत पर चढ़ गई। शाम का समय था। ठंडी हवा चल रही थी। रामचरणदास की पत्नी ने अपनी छत पर से मुकुट-बिहारी की छत की ओर झाँका। मुकुट बिहारी की पत्नी चारपाई पर लेटी हुई थी। उनकी कन्या बाजा बजा रही थी। पास में उनका पुत्र बैठा हुआ था। पड़ोसिन को झाँकते देख कर मुकुट बिहारी की पत्नी

बोली—"आओ बहन बाजा सुन लो।"

रामचरण की पत्नी बोली-"इसका क्या सुनना–गली गली बजा करते है, सुनते सुनते कान पक गये।"

मुकुट बिहारी की पत्नी को यह बात बुरी मालूम हुई। उसने व्यंग्यपूर्वक कहा–"जिनके पास है उन्हें सुनना ही पड़ता है।"

—"इसी मारे तो हमने अभी तक मंगाया नहीं। उन्होंने कई बेर इच्छा की कि ले आवें; पर मैंने मना कर दिया। दो चार दिन तो अच्छा मालूम होता है-फिर अच्छा नहीं लगता।"

—"रिकार्ड नये आते रहें तो सदा अच्छा लगता रहता है। पुराने रिकार्ड तो बुरे लगेंगे। यह पैसे का खेल है बहन। इसमें दस बीस रुपये हर महीने खरचता रहे तो अच्छा लगता है।"

पैसे की बात तो हुई है पर सारी बात यह है कि मुझे तो अच्छा ही नहीं लगता।"

—"पैसे का खेल है न!"

—"कितने का लिया?" रामचरणदास की पत्नी ने पूछा।

—"सवा सौ का बाजा है रिकार्ड अलग से हैं।"

—"घटिया है। अच्छा बाजा डेढ़ दो सौ से तो कम नहीं मिलता नीलाम से लिया होगा?"

—लिल्लाम से नहीं लिया, बिल्कुल नया है। हमारे यहां लिल्लाम की चीज नहीं आती। तुम लिल्लाम से मँगा लेना–सस्ता मिल जायगा।"

—"हमें तो शौक ही नहीं है।"

—"हाँ पैसे का खर्च है।"

—"शौक हो तो पैसा भी हो जाता है। जब शौक ही नहीं है तो चाहे मुफ्त मिले तब भी भारू है।"

इतना कहकर रामचरणदास की पत्नी वहाँ से हट आई परन्तु

उसके हृदय में पड़ोसिन की बातों से बड़ा शोक हुआ। पति के आने पर उसने उनसे कहा "आज मुकुटबिहारी की घर वाली ने ऐसी कहीं कि क्या कहूँ। बात बात में यही ताना देती थी कि पैसे का खेल है, पैसे का खर्च है। ऐसी बड़ी पैसे वाली है। उन्ही के पास तो पैसा है और किसी के पास तो थोड़ा ही है। चाहे जो हो अब एक बाजा तो लेना ही पड़ेगा। जब तक बाजा नहीं आजायगा मेरे जी को कल न पड़ेगी!"

रामचरणदास बोले—"अच्छी बात है, देखो कुछ न कुछ प्रबन्ध करूंगा।" अन्त में रामचरणदास ने दो सौ रुपये कर्ज लेकर एक बाजा खरीद ही लिया। अब दोनों ओर से जवाबी लड़ने लगी। दिनभर कोई न कोई बाजा बजा ही करता था। जब मुकुट बिहारी के यहां बन्द होता तो रामचरणदास के यहाँ बजने लगता और जब रामचरण के यहाँ बन्द होता तो मुकुटबिहारीलाल के यहाँ बजने लगता। मुहल्लेवालों की नाक में दम हो गया। परन्तु करते क्या, मजबूर थे। ग्रामोफोन बजाना कोई कानूनी जुर्म नहीं था। परन्तु अब लोगों को यह आश्चर्य होने लगा कि समय असमय ग्रामोफोन बजाना जुर्म क्यों नहीं समझा जाता। रिकार्डों में भी होड़ चलने लगी। मुकुट बिहारीलाल आज जो रिकार्ड लाये दो तीन दिन बाद राम-चरणदास भी वही रिकार्ड लाये। अथवा रामचरणदास को कोई नया रिकार्ड लाना ही पड़ा। और लुफ्त यह कि दोनों को एक दूसरे से शिकायत। जब मुकुटबिहारी के यहाँ बजता तो रामचरण-दास नाक—भौं सिकोड़ कर कहते कि—"जब देखो तब टें टें लगाये रहते हैं—न दिन देखें न रात।" इसी प्रकार मुकुटबिहारी के घर में भी रामचरणदास के यहाँ समय—कुसमय बाजा बजाने का चर्चा होता रहता। मुहल्ले वालों को तो दोनों से शिकायत थी। अन्त में जब मुहल्ले वाले तंग आ गये तो यह सोचा गया कि इस युद्ध को समाप्त करना चाहिए। मुहल्ले के कुछ बड़े-बूढ़े इस बात के लिए उद्यत हुए।

एक के घर पर समय नियत करके दोनों बुलाये गये और उनके सामने परिस्थिति रक्खी गई। मुकुटबिहारी सब सुन चुकने पर बोले—"ग्रामो-फोन बजाना कोई जुर्म तो है नहीं।"

"जुर्म होता तो हम लोग आप से न कहते तब सीधे पुलिस से कहते।" एक महोदय बोले।

—"भला बताइये तो यह भी कोई बात है कि रात के बारह एक-एक बजे तक चिल्ल-पों मची रहती है। और एक दिन हो दो दिन हो, चार दिन हो, तब तो खैर है, रोजाना का यही किस्सा है। नींद हराम हो गई जहाँ जरा नींद आने लगी वहीं "सँवरिया ने मारा नजर भरके।" संवरिया साले की नजर पड़ी नहीं कि नींद देवी रस्सियाँ तुड़ा कर भागीं। वैसे तो चाहे संवरिया की नजर न मारती, मगर जनाब, इस तरह तो सचमुच मार डालेगी।' एक दूसरे महाशय ने उत्तेजित होकर कहा।

—"हम तो बाजा अवश्य बजायेंगे।" रामचरणदास ने कहा।

—"बजाइये! कोई मना नहीं करता परन्तु समय कुसमय देखकर बजाइये यह नहीं कि रात के दो बजें आंख खुल गई तो उसी समय रेतने लगे। वाह! यह भी कोई शराफत है?"

—"यह बीज मुकुटबिहारी का बोया हुआ है, न यह बाजा लाते, न मुझे लाना पड़ता।"

—"यह कैसे?" एक ने प्रश्न किया।

—"यह बाजा लाये। इनकी पत्नी और मेरी पत्नी में कुछ वार्त्ता-लाप हुआ। कुछ ताना दिया होगा, बस मेरी पत्नी मेरे पीछे पड़ गई। मजबूर होकर मुझे भी लाना पड़ा। इस बाजे के पीछे मुझ पर तीन चार सौ का कर्ज भी हो गया। आपके यहाँ जब कोई नया रिकार्ड आया तब मुझे भी लाना पड़ा।"

यह सुनकर उपस्थित लोग बहुत हँसे। अन्त में दोनों को समझा

बुझा कर उनमें सन्धि कराई गई और आपस की यह होड़ बन्द करने के लिये उनसे प्रार्थना की गई।

अब आजकल मुहल्ले में शान्ति है। कभी-कभी मुकुट बिहारी के यहाँ और रामचरणदास के यहाँ घण्टे आध घण्टे के लिये बाजा सुनाई पड़ता है। सच बात तो यह है कि वे दोनों स्वयं बाजे से ऊब चुके थे परन्तु केवल होड़ के कारण बजाया करते थे। जब होड़ समाप्त होगई तो उनका शौक भी समाप्त होगया।

ताश का खेल

सबेरे आठ बजे देहली एक्सप्रेस स्टेशन पर आकर रुका। यात्री उतरने चढ़ने लगे। इसी समय हाथ में एक एटेची लिये हुए एक अर्द्ध-वयस्क पुरुष जो आँखों पर नीला चश्मा चढ़ाये था—घनी दाढ़ी मूछें कोट-नेकटाई तथा पेन्ट से सुसज्जित एक सेकेण्ड क्लास कम्पार्टमेंट में चढ़ गया। इस कम्पार्टमेंट में एक क्लीनशेव्ड गोरे-चिट्टे सज्जन जिनकी वयस ३०, ३५ के लगभग होगी पहले से ही उपस्थित थे। यह सज्जन गठीले बदन के बलवांन आदमी प्रतीत होते थे। सिर के बाल काफी चिकने तथा चमकदार कमीज भी बढ़िया कपड़े तथा डिजायन की थी।

अर्द्धवस्यक व्यक्ति ने अपने एटेची से एक अंग्रेजी का पत्र निकाला और पढ़ना आरम्भ किया। दूसरे व्यक्ति ने भी एक हाकर से अखबार खरीदा। इसी प्रकार दोनों अखबार पढ़ने लगे। गाड़ी चल दी।

सबसे पहले अर्द्धवयस्क सज्जन ने अखबार समाप्त किया और उसे एटेची में रखकर एक अंग्रेजी का मासिक पत्र निकाला। कुछ क्षण पश्चात क्लीन शेव्ड महाशय ने भी अखबार समाप्त करके अपने

सामने रख लिया और जोर की अंगड़ाई ली। तदुपरान्त अद्ध वयस्क की ओर देखकर बोला—"आप कहाँ तशरीफ ले जायंगे?"

"मैं देहली जा रहा हूँ और आप?"

'मैं भी देहली जा रहा हूँ। हमारा आपका साथ आखिर तक रहेगा।" क्लीन शेव्ड महाशय ने हँसकर कहा।

"जी हाँ शाम को ६ बजे देहली पहुँचेगा।"

"हाँ कुछ पहले पहुँच जायगा—पाँच बजे के करीब।"

इसके पश्चात अखबारी समाचारों पर वार्तालाप होने लगा। कुछ देर तक यह वार्तालाप चला। इसके पश्चात् दोनों मौन होकर खिड़की के बाहर का दृश्य देखने लगे। सहसा क्लीनशेव्ड महाशय बोले—"सफर में वक्त काटना बहुत मुश्किल हो जाता है।"

"जी हाँ खास कर दिन का सफर तो बड़ी मुश्किल से कटता है।"

"जी हाँ! रात में तो सोते चले गये समय मालूम ही नहीं होता।"

"मुझे तो दिन में भी नींद आने लगती है।"

"इसकी वजह है। रेल के हिलने से बदन भी हिलता रहता है और बदन हिलने से नींद आने लगती है। आपने देखा होगा कि बच्चों को सुलाने के लिए गोद में लेकर या पालने में झुलाया जाता है। ऐसा करने से बच्चा सो जाता है। बच्चे के सो जाने की वजह बदन का हिलना ही होता है।"

"बिल्कुल ठीक! आपने साईटिफिक बात कही।"

"मैंने साइन्स की भी 'स्टडी' की है।"

"खूब! बड़ा इन्टरेस्टिंग सबजेक्ट है।"

"जी हाँ! साइन्स से सब बात की असलियत मालूम हो जाती है।"

"मेरा भी इरादा साइन्स लेने का था, मगर मैं मैथेमेटिक्स में कमजोर था इसलिए साइन्स न ले सका। साइन्स में मैथेमेटिक्स बहुत है।"

"जी हाँ ! मैथेमेटिक्स खुद ही साइन्स है ।"

"इसमें क्या शक है !"

दोनों पुनः मौन होकर बाहर की ओर देखने लगे ।

थोड़ी देर पश्चात गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी ।

गाड़ी के रुकते ही दो अन्य महाशय कम्पार्टमेन्ट में आगये । इन दोनों ने बीच वाले बर्थ पर आसन जमाया । इनके पास भी अधिक सामान न था—केवल एक एक एटेचीकेस था । कुछ देर ये दोनों परस्पर इधर-उधर की बातें करते रहे । इसके पश्चात् एक बोला—"ताश निकालो, किसी तरह समय तो कटे ।"

दूसरे ने एटेची खोल कर एक पैकेट ताश निकाला और उसे फेंटते हुए दूसरे से पूछा "क्या खेलोगे—चानस ?"

"हाँ दो आदमियों में और क्या हो सकता है ।"

"अच्छी बात है ।"

यह कह कर उसने पत्ते बाँटे और खेल आरम्भ हुआ । क्लीन शेव्ड महाशय खेल में दिलचस्पी लेने लगे । अर्द्ध वयस्क सज्जन अर्द्ध शयनावस्था में आखें बन्द किये लेटे थे ।

खेल होता रहा । इतने में इटावा स्टेशन आ गया । ताश अलग रखकर एक बोला—"यहां पूरियाँ लेना चाहिए-अच्छी होती हैं ।"

"हाँ ! इटावा की पूरियाँ मशहूर हैं ।"

उन दोनों ने, पूरियाँ खरीदीं । क्लीन शेव्ड महाशय ने कुछ फल लिये । अर्द्धवयस्क व्यक्ति ने भी फल खरीदे । नवागन्तुक व्यक्तियों में से एक बोला—"पूरियाँ लीजिए, बढ़िया है ।"

"सफर में मैं अन्न कम खाता हूँ । फल ही खालेता हूँ ।" क्लीन शेव्ड महाशय बोले ।

अर्द्धवयस्क व्यक्ति बोल उठा—

"जी हाँ ! मैं भी सफर में फल का ही इस्तेमाल रखता हूँ ।"

"साहब, हमारा तो पेट बिना अन्न के नहीं भरता। न जाने लोग कैसे फल से पेट भर लेते हैं।"

"पेट तो भर जाता है। यह कहिये नियत नहीं भरती।"

"जी हाँ ! भोजन के बाद जो एक पेट भरने तथा तृप्त होने का अनुभव होता है, वह फल खाने से नहीं होता। यह अन्तर है। वैसे पेट तो फलों से भी भर ही जाता है।" इसके बाद दोनों पूरियाँ खाने में जुट गये। शेष दोनों फल खाने लगे। खा-पी चुकने के बाद नवागन्तुक ने अपनी जेब से पानों का डिब्बा निकाला। उसमें से दो पान उन्होंने पहले क्लीन शेव्ड महाशय को दिये। तदुपरान्त अर्द्धवयस्क सज्जन की ओर दो पान बढ़ाये।

अर्द्धवयस्क सज्जन ने क्षमा माँगते हुए कहा—"मैं पान नहीं खाता।"

"बिल्कुल !"

"जी ! पान खाने से मुँह में छाले पड़ जाते हैं।

यह कह कर उसने अपना सिगरेट केस निकाला और उसमें से एक सिगरेट सुलगा कर केस जेब में रख लिया।

उन तीनों व्यक्तियों ने भी अपने अपने केस निकाल कर सिगरेट सुलगाई। उन दोनों में से एक बोला "ताश बाँटूं ?"

"दो आदमियों में लुफ्त नहीं आता। चार आदमी हों तो ब्रिज खेला जाय।"

क्लीन शेव्ड सज्जन बोल उठे—"ब्रिज तो मैं भी खेल सकता हूँ।"

"वाह वा ! तब तो बड़ी सुन्दर बात है। आप ब्रिज खेलेंगे ?" अर्द्धवयस्क सज्जन से प्रश्न किया गया।

"जी हाँ खेल लूंगा।"

"फिर क्या है—"पार्टी बन गई।"

"मगर ब्रिज में बिना स्टेक (दाँव) के लुफ्त न आयगा।"

"हाँ यह बात तो है। आपको स्टेक से खेलने में कोई आवजेक्शन (आपत्ति) तो नहीं है?"

"जी नहीं! ब्रिज तो स्टेक का खेल ही है।"

"वाह वा! तब तो काम बन गया। आइये इधर आजाइये।"

अर्द्ध वयस्क सज्जन क्लीन शेव्ड महाशय के पास आ बैठे। एक नवागन्तुक क्लीन शेव्ड महाशय का पार्टनर बन गया, दूसरा अर्द्ध वयस्क सज्जन का। खेल आरम्भ हुआ।

(३)

पत्ते बाँटते हुए सहसा क्लीन शेव्ड महाशय बोल उठे—"स्टेक तो रख लीजिए।"

"चार आना प्वाइन्ट? क्यों साहब?"

अन्तिम वाक्य अर्द्ध वयस्क सज्जन से कहा गया।

"जैसा आप लोग ठीक समझें मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

"क्लीन शेव्ड महाशय बोले—"आठ आना रक्खो।"

"आठ आना सही क्यों साहब?"

"जैसा आप लोग ठीक समझें।" अर्द्धवयस्क महोदय ने कहा।

"तो बस आठ आना प्वाइन्ट ही रहा।" इसके पश्चात खेल आरम्भ हुआ।

पहला "रबर" समाप्त हुआ। यद्यपि 'रबर' अर्द्धवयस्क सज्जन तथा उनके पार्टनर का हुआ परन्तु फिर भी ये दोनों बीस प्वाइन्ट से हारे, क्योंकि ये दोनों पहले बहुत 'डाउन' दे चुके थे।

दूसरा रबर क्लीन शेव्ड महाशय जीते। इस रबर में भी पन्द्रह प्वाइन्ट से क्लीन शेव्ड तथा उनके पार्टनर महाशय जीते। तीसरा रबर अर्द्धवयस्क महाशय जीते। इसमें इनकी तीन प्वाइन्ट की जीत रही। इसी प्रकार तीन घन्टे तक खेल चलता रहा। तीन घन्टे पश्चात अर्द्ध वयस्क महाशय तथा उनका पार्टनर १०० प्वाइन्ट की हार में होगये।

अर्द्धवयस्क सज्जन बोले—"अब रबर और खेल लीजिये। शायद कुछ तकदीर लड़ जाय और हार में कुछ कमी हो जाय।"

क्लीन शेव्ड महाशय हंसकर बोले—"जरूर, सँभल कर खेलिये। आप डाउन बहुत देते हैं।

"हमारे पार्टनर साहब 'ओवरबिड' कर जाते हैं। इस बार जरा समझ-बूझ कर 'काल दीजिएगा।"

अर्द्धवयस्क का पार्टनर बोला—"इस बार मैं काल दूंगा ही नहीं—आपको सपोर्ट करूंगा बस।"

"नहीं। जब पत्ते अच्छे हों तो काल दीजिए—कमजोर पत्तों पर मत दीजिए।"

खेल आरम्भ हुआ। एक घन्टे में यह रबर भी समाप्त होगया। इस रबर में भी अर्द्धवयस्क सज्जन बारह प्वाइन्ट से हारे। इसी समय गाजियाबाद स्टेशन आ गया। अर्द्धवयस्क सज्जन बोले—"अब रखिये! देहली आ रहा है। आज कल (भाग्य) खराब है। जीत नहीं सकते। "कुल कितने प्वाइन्ट से हारे।"

"एक सौ बारह प्वाइन्ट से!"

"यानी छप्पन रुपये।"

"जी हां।"

"तो आधे आप दें आधे मैं।"

अर्द्धवयस्क ने अपने साझी से कहा।

"जी हाँ!" यह कह कर उसने अपना 'पर्स' (बटुवा) निकाला और अट्ठाइस रुपये निकाल कर दे दिये। अर्द्धवयस्क सज्जन अपनी बर्थ पर आगये और उन्होंने अपना एटेची केस खोला। सहसा इन तीनों के कान में आवाज आई—"हैन्ड्स आप।"

तीनों ने अर्द्धवयस्क की ओर देखा। उसके हाथ में एक पिस्तौल था जिसकी नली इन तीनों की ओर थी। तीनों ने घबराकर

अपने अपने हाथ उठा लिये।

ट्रेन शाहदरा स्टेशन पर पहुँच रही थी। अर्द्धवयस्क सज्जन बोले—"मैं आप लोगों की तलाश में बहुत दिन से था। भोले भाले और ब्रिज के शौकीन खिलाड़ियों को आप तीनों मिलकर खूब लूटते हैं। मेरे पार्टनर साहब जान बूझ कर 'ओवर बिड' करते थे और खेलते भी खराब थे। क्यों साहब थ्री नोट्रम्प्स पर फोर स्पेड का काल, वह भी सिर्फ चार पत्तों पर जिसका इक्का भी आपके पास नहीं।'

इसी समय शाहदरा स्टेशन पर गाड़ी रुकी। अर्द्धवयस्क ने दाढ़ी मूंछ उतार डाली। अब वह भी क्लीन शेव्ड व्यक्ति होगया। उसने खिड़की से झांक कर प्लेटफार्म पर खड़े हुए कान्स्टेबिल को पुकारा। उसके आने पर उसने कहा—"तीन आदमियों को गिरफ्तार करना है। जल्दी करो। हाँ आप लोग उतरिये। तीनों चुपचाप गाड़ी के बाहर आगये। उनके प्लेटफार्म पर उतरते ही पुलिस ने उन्हें हिरासत में ले लिया।

सब इन्सपेक्टर बोला—"खूब पकड़ा इन्सपेक्टर साहब!'

"बहुत दिनों में फँसे हैं।"

दूसरे दिन अखबारों में समाचार छपा—"सी० आई० डी० इन्सपेक्टर ने ठगों के एक दल को गिरफ्तार किया है। कहा जाता है कि यह दल ताश के खेल में मुसाफिरों को ठगने का व्यवसाय किया करता था।

लगान

(१)

"मैं भी कुम्भ-स्नान करने जाउंगी"

चारपाई पर लेटी हुई सोहनलाल की वृद्धा माता ने कहा। वृद्धा की वयस ५५ वर्ष के लगभग थी। इधर एक सप्ताह से बुढ़िया को ज्वर आ रहा था। चारपाई के पास बैठी हुई स्त्रियां हँसने लगीं। एक बोली-'माजी ! तुम से उठा तो जाता नहीं स्नान करने कैसे जाओगी ?"

"जाउंगी !" बुढ़िया ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

सोहनलाल की पत्नी धीमे-स्वर में बोली—"कभी कभी इस तरह बकने लगती हैं।"

"बुखार में बकने लगते हैं। इस समय बुखार अधिक हो गया होगा।"

स्त्री ने बुढ़िया के माथे पर हाथ रख कर कहा—ऐसा कुछ बुखार भी नहीं है।"

सोहनलाल की पत्नी ने भी हाथ धर कर देखा। देखकर वह भी बोली—"हाँ ! कुछ अधिक तो नहीं है खाली हरारत है।'

बुढ़िया पुनः बोली—"सोहन कहाँ है ?"

सोहन की पत्नी बोली "दवा लेने गये हैं ?"

बुढ़िया बोली "दवा-अबा नही खाउंगी, कुम्भ जाउंगी। वहाँ अच्छी हो जाउंगी।'

वह स्त्री बोली—"माँजी ! भला तुम से जाया जायगा। वहाँ इतना भीड़ भड़क्का होगा कि आदमी का खड़ा होना कठिन होगा तुम तो अभी अपने पैरों चल भी नहीं सकतीं।"

'जाउंगी !" बुढ़िया ने मानों पूर्ण निश्चय के साथ कहा।

दोनों स्त्रियाँ पुनः हँसी। वह स्त्री बोली—"कोई बुखार ऐसा होता है कि थोड़ी हराहत में भी आदमी बकने लगता है।

इसी समय सोहनलाल दवा लेकर आगया।

सोहनलाल बोला "तुम तो अम्माँ पागलों की सी बातें करती हो। भला तुम कुम्भ में जाने लायक हो ? उठकर बैठना पड़ेगा—फिर रेल का सफर- यह सब तुम्हारे बूते का होगा ?"

"वहाँ तक पहुंच जाऊं। फिर चाहे मर जाऊं।"

"वहाँ तक पहुँचना ही कठिन है। तुम तो रास्ते में ही रह जाओगी। तुम नहीं जा सकतीं। उसका ध्यान छोड़ो !'।

"जाउंगी तो जरूर !'

"अच्छा जाना पहले जाने लायक हो जाओ। अभी कुम्भ के चार पाँच दिन बाकी हैं। तब तक जाने लायक हो जाओ तो चली जाना।"

"बुढ़िया फिर उसी प्रकार बोली "हाँ जाऊंगी !"

सोहनलाल ने दवा पिलाई। थोड़ी देर पश्चात बुढ़िया को निद्रा आगई।

(२)

शाम को सोहनलाल के परम मित्र ब्रह्मानन्द आये। उन्होंने पूछा "माँ का क्या हाल है ?"

"हाल वैसा ही है। बुखार तो अभी उतरा नहीं। कुम्भ की रट लगाये हैं।"

"क्या बतावें। बेचारी ऐसे बुरे मौके पर बिमार हुई। नहीं मैं उन्हें अवश्य ले जाता।"

"तुम कब जा रहे हो ?" सोहन ने पूछा।

"मैं कल जाऊंगा।"

"साथ में कौन कौन जारहा है।"

"माँ, बुधा, छोटा भाई और पत्नी।"

"बड़ा बखेड़ा लिये जारहे हो।"

"क्या कहूँ ! प्राण बचते हैं ! मुझे तो भई इन बातों में विश्वास नहीं कि कुम्भ नहाने से मोक्ष मिलती है। मेरा तो यह ख्याल है कि यह पुराने जमाने का सम्मेलन है। पहले रेल वेल तो थी नहीं जो लोग हर साल सम्मेलन कर लिया करते। इसलिये छः वर्ष और बारह वर्ष बाद वह सम्मेलन होते थे। इस प्रकार देश भर के आदमी परस्पर मिल लेते थे।"

"तुम्हारा ख्याल ठीक है।"

"चलो जरा माता जी को देख लें।"

"चलो, परन्तु उनसे न कहना कि कुम्भ जा रहे हो वरना आफत कर देंगी।"

'नहीं उनसे नहीं कहूँगा।'

दोनों बुढ़िया के पास पहुँचे। ब्रह्मानन्द को देखते ही बढ़िया बोली—"कुम्भ कब जाओगे ?"

ब्रह्मानन्द बोला—"अभी तो कुछ निश्चय नहीं किया है।"

"तुम तो जरूर जाओगे ?"

"कह नहीं सकता। भीड़ भड़क्का बहुत होगा इससे तबियत घबराती है।"

"भीड़ क्या करेगी ?"

"हाँ मैं अकेला जाऊं तब तो भीड़ कुछ नहीं कर सकती; पर बाल-बच्चों को लेकर जाना तो बड़ी मुसीबत है।"

"जाना चाहिए ! फिर मिलें न मिलें।"

"सो बात तो नहीं है। जिन्दगी है तो मिलेंगे क्यों नहीं।"

"जिन्दगी का क्या भरोसा। तुम्हारी माँ तो जरूर जायगी।"

"देखिये !"

"वह जरूर जायगी। मुझ से उसका वायदा हैं। मैंने भी कहा था मैं जरूर चलूंगी।"

"खैर तुम तो अब जा नहीं सकोगी ?"

बुढ़िया एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोली—"जाऊंगी तो जरूर !'

ब्रह्मानन्द विस्मित होकर सोहन लाल का मुंह ताकने लगे। सोहन-लाल विषाद युक्त मुस्कान के साथ बोले—"अच्छा जाना। मना कौन करता है। पहले अच्छी तो हो जाओ।"

थोड़ी देर पश्चात ब्रह्मानन्द बिदा हुए। चलते समय बुढ़िया बोली—"अपनी माँ से कह देना। वह जाय तो मुझे भी साथ ले ले। वह मुझ से कह चुकी है।"

"अच्छी बात है कह दूंगा।"

दोनों बाहर आये। ब्रह्मानन्द बोले "इनकी बड़ी उत्कट इच्छा है जाने की।......

"हाँ, परन्तु जा कैसे सकती है ? बिल्कुल असम्भव है।"

"नहीं जी ! जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है, अच्छा चलता हूँ। कल दोपहर की गाड़ी से जाऊंगा।"

"वहाँ का हाल चाल लिखना।"

"अवश्य !"

(३)

कुम्भ के एक दिन पूर्व सोहनलाल की माता ने पूछा कि—"बेटा ! अब कुम्भ के कितने दिन रह गये ?"

"कल है अम्माँ !"

"कल" बुढ़िया चौंक कर बोली।

"हाँ !"

',ब्रह्मानन्द की माँ गई ?"

"हाँ वह तो शायद चली गई।"

"मुझे नहीं ले गई !"

"तुम तो माँ पागलों की सी बातें करती हो, भला तुम जाने लायक हो !"

"मेरा उसका वादा हो चुका था।"

"यदि अच्छी होतीं तो वादा पूरा हो जाता। ऐसी दशा में कैसे हो सकता है ?"

बुढ़िया मौन हो गई। थोड़ी देर में सोहनलाल ने देखा कि बुढ़िया की आंखों से आंसू बह रहे हैं। सोहनलाल आंसू पोंछते हुए बोला—"तुम व्यर्थ में दुखी होती हो। जो बात अपने बस की नहीं है उसमें आदमी क्या करे। भगवान की इच्छा नहीं है कि तुम जाओ। उसकी इच्छा होती तो तुम्हें बुखार क्यों आ जाता।"

बुढ़िया ने कोई उत्तर न दिया।

रात के बारह बजे सोहनलाल की पत्नी सोहनलाल को जगा कर बोली "जरा देखो तो अम्माँ की दशा ठीक नहीं मालूम होती।"

सोहनलाल घबरा कर उठे। माता को देखा। उनकी उलटी साँस

चल रही थी। सोहनलाल घबरा गये। बोले—"इन्हें नीचे उतार लेना चाहिए।"

दोनों ने मिलकर भूमि पर कुशासन लगाया। तत्पश्चात बुढ़िया को चारपाई से उतार कर आसन पर लिटा दिया। सोहनलाल बोले—"अब इस समय दवा-दारू देना तो व्यर्थ है।"

"नहीं! इस समय कोई जरूरत नहीं। अब अन्त समय है।" इतना कह कर सोहनलाल की पत्नी सिसकियाँ लेकर रोने लगी। सोहनलाल ने भी रोना आरम्भ किया।

रात के एक बजे के लगभग बुढ़िया के प्राण छूट गये।

× × × ×

बुढ़िया की मृत्यु के चार दिन पश्चात् सोहनलाल को ब्रह्मानन्द का पत्र मिला। पत्र में लिखा था—

प्रिय सोहनलाल!

हम सब सकुशल हरद्वार पहुँच गये। कैसे पहुँचे? यह न पूछो। जो मुसीबतें उठाईं वह हमीं लोग जानते हैं। यहाँ बड़ी भीड़ है। रास्ता चलना भी एक समस्या हो रही है। खैर इन बातों का विस्तृत वर्णन मिलने पर बताऊँगा। एक बड़ी विचित्र बात हुई। कुम्भ के एक दिन पहले अर्थात् १३ तारीख रात को माता जी ने एक बड़ी अद्भुत बात देखी। सबेरे ३ बजे का समय था। माँ सबसे पहले जागीं और शौच जाने के लिये दालान में पानी लेने गईं। सहसा उनकी दृष्टि आँगन की ओर गई। आँगन में चाँदनी फैली हुई थी। सहसा मां ने देखा कि तुम्हारी माता आँगन में खड़ी हैं। मेरी माता की ओर वह देखकर मुस्कराईं। माता जी चकित होकर बोलीं अरी तू कब आई? तुम्हारी माता ने कोई उत्तर न दिया, केवल मुस्करा कर रह गईं। मेरी माता जी आँगन की ओर बढ़ीं। उनके बढ़ते ही तुम्हारी माता अदृश्य हो गईं। मेरा ख्याल तो यह है कि अम्माँ ने स्वप्न देखा होगा

पर वह निश्चय पूर्वक कहती हैं कि उन्होंने यह सब जागृतावस्था और पूरे होश-हवास में देखा। परमात्मा जाने क्या बात है। माता जी की तबीयत कैसी है? अम्माँ तुम्हें और बहू को आशीर्वाद कहती हैं।

तुम्हारा
ब्रह्मानन्द

पत्र पढ़ने के पश्चात सोहनलाल पत्नी की ओर देखकर बोले—"माँ तो शायद एक बजे.......।"

पत्नी बोल उठीं—"हाँ एक बजे प्राण छूटे थे।"

"और ३ बजे हरद्वार में ब्रह्मानन्द की माँ को दिखाई दीं।"

विस्मय पूर्ण नेत्रों से पत्नी ने पति की ओर तथा पति ने पत्नी की ओर देखा। दोनों मौन थे।

धर्म का धक्का

शाम को सात बज चुके थे। इसी समय नगर की एक गली में एक संयासी यह कहता हुआ फेरी लगा रहा था—

चुन चुन माटी महल बनाया
लोग कहें घर मेरा है,
न घर मेरा न घर तेरा,
चिड़िया रैन बसेरा है।
रामा मर गये कृष्णा मर गये—
मर गयो सक्खू बाई,
उस मालिक से प्रीति लगाओ,
जिसकी मौत न आई।

अलख निरन्जन ! दो सेर आटा, सेर भर चावल, पाव भर दाल और सोलह इकन्नियों का सवाल है, आज ही आज में लेंगे। अलख निरन्जन।"

जब सन्यासी फेरी लगाता हुआ दूसरी ओर चला गया तो एक व्यक्ति अपने घर के चबूतरे पर आकर एक वृद्ध से, जो अपने द्वार की दहलीज पर इस प्रकार बैठे थे मानों दुनिया से आजिज आ गये हों— बोला, "काहे दादा, यह सन्यासी यह क्या कहता है कि रामा मर गये, कृष्णा मर गये—?"

दादा की तबीअत बेमजे थी, इस कारण बोले—"क्या जानें क्या कहता है। सब माँगने-खाने की बातें हैं। दो सेर आटा, सेर भर चावल? अकेले तो हैं, इतनी जिनिस लेकर क्या करेंगे? बेचेंगे! यही करते हैं।" यह कह कर दादा पुनः शून्य की झाँकी देखने लगे। वह व्यक्ति बोला—"कोई आर्य समाजी मालूम होता है।"

"कोई समाजी होंय, अपने से क्या?"

दादा की उद्विग्नता तोड़ कर वह व्यक्ति बोला—"आज कैसे सुस्त बैठे हो?"

"ठीक बैठे हैं, सुस्त तो नहीं हैं।"

"सो बात तो नहीं है, कुछ सुस्ती तो जरूर है।"

दादा मौन होकर विचार करने लगे। वह व्यक्ति कुछ क्षण तक दादा के बोलने की प्रतीक्षा करके बोला—"अब की आवे तो इस संयासी से पूछना चाहिये।"

दादा बोले—"पूछना! कुछ आँय बाँय—शाँय बक देगा।"

थोड़ी देर में सन्यासी फेरी लगाता हुआ पुनः उस ओर आया। जब वह आवाज लगा कर चलने लगा तो व्यक्ति ने पूछा—'क्यों बाबा! यह रामा मर गये कृष्णा मर गये का क्या मतलब है?"

सन्यासी मुस्कराकर बोला—"मतलब तो साफ है। राम की मृत्यु हुई, कृष्ण की मृत्यु हुई, जो उत्पन्न हुआ उसकी मृत्यु हुई।"

"मृत्यु तो हुई, परन्तु क्या वे भगवान नहीं थे?"

"अगर थे भी तो इससे क्या?"

"मौत किसको नहीं आती !"

"सच्चिदानन्द परब्रह्म को ! न जायते म्रियते वा।"

"न वह जन्म लेता है, न मरता है।जो अजर अमर अविनाशी, नित्य है, उससे प्रीति लगाना चाहिए। नाशवान चीजों से चित्त लगाने में तो क्लेश ही क्लेश है। उस वस्तु का नाश होने पर महान क्लेश होता है अथवा उस वस्तु को छोड़कर स्वयं जाने में भी क्लेश होता है। अन्त समय उसी में प्राण अटके रहते हैं। इससे इन सब चीजों को त्याग कर केवल उससे प्रीति लगाओ जो अजर अमर अविनाशी है। कहीं भी जाओ कहीं भी रहो, हर समय तुम्हारे साथ है, तुम्हारे पास है।"

दादा बड़े ध्यान से सन्यासी की बात सुन रहे थे। जब सन्यासी अपना कथन समाप्त करके जाने लगा तो बोले—"ठहरो !"

सन्यासी ठहर गया। बाबा घर के भीतर चले गये और कुछ देर बाद आटा दाल इत्यादि लेकर निकले और बोले—"लेओ महाराज।"

सन्यासी ने सब सामन बाँध लिया। इसके पश्चात दादा ने उसे एक रुपया देते हुए कहा—"अब तो आपका सवाल पूरा हो गया।"

"हाँ ! पूरा हो गया। बस अब जाते हैं।"

"कहाँ ठहरे हो बाबा ?" दादा ने पूछा।

'गंगा तट पर.......घाट के निकट !" यह कहकर सन्यासी चल दिया।

(२)

सन्यासी के चले जाने पर उस व्यक्ति ने पूछा—"कहाँ तो आप सन्यासी पर इतने नाराज थे कि खाने कमाने वाला बता रहे थे और कहाँ स्वयं आपने ही सारा सामान दे दिया।"

दादा बोले—"भई, बात उसने ऐसी कही कि चित्त को जँच गई ! सच्ची बात कही। नाशवान से चित्त लगाने में दुःख ही दुःख है। सुख तो केवल भगवान से चित्त लगाने में है—जो हर समय पास रहते हैं।"

वह व्यक्ति हँस पड़ा। दादा ने पूछा—"हँसे क्यों?"

"हँसे यों कि सन्यासी ने एक चुटकुले में आपको बस में कर लिया!"

"बस में तो खैर क्या कर लिया। परन्तु कही पते की, इतना जरूर मानना पड़ेगा।"

"यह तो पुरानी बात है, कोई नई बात नहीं है।"

'समय की बात है। इस समय सुनते ही समझ में आगई। वैसे न जाने कितनी बार सुन चुके होंगे। तब नहीं जँची।'

"जान पड़ता है घर में कुछ झगड़ा हुआ है तभी इतनी जल्दी जँच गई।"

"झगड़ा तो यह दुनिया ही है। जब तक दुनिया है तब तक सब झगड़ा ही झगड़ा है। और अब तो वह जमाना लगा है कि सब अपने ही मतलब की सोचते है, अपने मतलब को कहते हैं। न कोई बड़े को मानता है न छोटे को।"

यह कह कर दादा भीतर चले गये।

दूसरे दिन दादा उक्त सन्यासी के पास पहुँचे।

गंगातट पर एक फूस की झोपड़ी में बाबा जी बैठे थे। दादा को देख कर मुस्कराते हुए दादा का स्वागत करने के पश्चात सन्यासी ने पूछा—"कहिये!"दादा हाथ जोड़ कर बोले—'ऐसे ही आपके दर्शन को चला आया।"

"अच्छा! अच्छा!"

कुछ देर तक मौन बैठे रहने के पश्चात दादा बोले—"महाराज, मेरा चित्त संसार से बहुत ऊब उठा है।"

"क्यों?" सन्यासी ने पूछा।

"घर के सब आदमी अपने अपने मन के हो गये हैं, हमारी न कोई सुनता है और न मानता है। हम देख-देख कर अपना खून जलाया करते है।"

"यह बड़ा क्लेश है।"

"हाँ! कुछ पूछिये नहीं, चित्त बड़ा अशान्त रहता है।"

'अवश्य रहता होगा।"

"इसका कोई उपाय है?"

"संसार में कोई ऐसी बात नहीं जिसका उपाय न हो।"

"उपाय है तो बताइये—आपकी बड़ी कृपा होगी।"

"उपाय है ईश्वर भजन।"

"ईश्वर भजन ही तो नहीं होता।"

"होगा क्यों नहीं। अभ्यास करने से सब होगा।"

"तुम्हारे पास कुछ धन है?"

दादा सन्यासी का मुँह ताकने लगे।

"यदि शान्ति चाहते हो तो हमारी बात का ठीक-ठीक उत्तर दो।"

दादा बोले—"हाँ कुछ धन तो है। लड़कों से छिपाकर अपने बुढ़ापे के लिए रख छोड़ा है।"

"अच्छा तो पहले वह सब धन हमारे पास ले आओ। जब तक वह तुम्हारे पास रहेगा तब तक तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी। तुम्हारी अशान्ति का कारण वही है।"

"हमारी अशान्ति का कारण वह नहीं है।"

"है कैसे नहीं, तुम्हारा चित्त धन के कारण ही स्थिर नहीं रहता है।"

"कैसे कहें।"

"देखो! जब तुम्हें कोई कुछ कहता है तो तुम्हें अपने धन के कारण वह बात असहनीय लगती है। धन का अहंकार उत्पन्न होता है। इसी प्रकार धन के कारण ही तुम्हारे अन्दर राग-द्वेष स्थान किये हुए हैं। अतएव अपना वह धन लाकर हमें दो। हम भण्डारा करके उसे खर्च कर दें। बस तुम्हें शान्ति मिल जायगी। जाओ कल सब लेते आना!"

(३)

दादा विचार करते हुए घर आये- मन में बड़े तर्क-वितर्क संकल्प-विकल्प करते रहे। अन्तोतगत्वा यही निश्चय किया कि जब सन्यासी से बात हो चुकी है तब उसकी बात न मानने से अकल्याण हो सकता हैं। यह सोच कर दादा ने दो हजार रुपये के लगभग, जो उनके पास थे, ले जाकर सन्यासी के सम्मुख रख दिये। सन्यासी रुपये देख कर बोला "सब ले आये ?"

"हाँ महाराज ?"

"अच्छा तो कल भण्डारे का प्रबन्ध होगा।"

थोड़ी देर बैठ कर दादा चल दिए परन्तु उन्हें रह-रह कर रुपयों का ध्यान आ रहा था। कभी सोचते थे कि रुपये देकर ठीक नहीं किया, फिर सोचते थे कि रुपयों का न रहना ही अच्छा है।

दूसरे दिन जब दादा भण्डारे का प्रबन्ध देखने के लिए सन्यासी के पास गए, तो झोंपड़ी को खाली पाया। लोगों से पूछने पर पता लगा कि कल सन्यासी कहीं चला गया। यह सुन कर दादा की नीचे की श्वास नीचे और ऊपर की ऊपर रह गई। कुछ देर तक बौखलाये हुए इधर-उधर ताकते रहे। इसके उपरांत घर की ओर चले। रुपयों का बड़ा भारी पश्चाताप था। साथ ही सबसे बड़ा दुःख यह था कि यह बात किसी से कह भी नहीं सकते थे। कहने से लोग उल्टे उन्हीं को उल्लू बनाते और दादा को कोई बेवकूफ बनाये या समझे यह बात दादा के लिए नितान्त असहनीय थी। इस कारण चित्त मसोस कर मन ही मन दुःखी हो रहे थे। यह भी भय था कि यदि घर वाले सुनेंगे कि रुपये सन्यासी को दे दिये तो वे बुरी तरह पेश आवेंगे।

दादा जब घर लौटे तो पड़ोसी ने कहा—"क्या सन्यासी के पास से आ रहे हो ? आज कल सन्यासी के बड़े भक्त हो रहे हो।"

दादा बोले—"वह तो कल कहीं चले गये।"

'चले गये ! तब तो आपको उनके बिना चैन न पड़ता होगा !"

दादा ने कोई उत्तर न दिया।

वह व्यक्ति बोला—"नाशवान से चित्त लगाने से यही होता है।"

दादा मन में सोचने लगे—"ठीक है ! नाशवान से चित्त लगाने से यही होता है। रुपया भी नाशवान, सन्यासी भी नाशवान् ! सब नाशवान् ! कुछ नहीं ! इस नाशवान् संसार में सुख नहीं है।"

वह व्यक्ति फिर बोला—"इन लोगों का मेल क्या। जोगी किसके मीत कलन्दर किसके भाई।"

"कोई किसी का मीत नहीं।" दादा ने विषादपूर्ण स्वर से कहा।

दूसरे दिन दादा लापता हो गये। बहुत खोज करने पर भी उनका पता न लगा।

लोगों का खयाल है कि दादा सन्यासी के फेर में घर छोड़ गये। परन्तु दादा क्यों गए, यह उनके अतिरिक्त और कौन जान सकता है !

भूत लीला

"यह भुतहा मकान है।" एक खाली मकान के पड़ोस में रहने वाले एक व्यक्ति ने यह वाक्य उन लोगों से कहा जो उक्त मकान को किराये पर लेने के लिए उसे देखने आये थे।

मकान देखने वालों में दो पुरुष थे तथा एक स्त्री। एक पुरुष वृद्ध था, दूसरा जवान, स्त्री भी वृद्धा थी। पड़ोसी की बात सुनकर वृद्ध बोला—"अच्छा! कैसे मालूम हुआ कि भुतहा मकान है।"

"इसमें कोई टिकता ही नहीं, दो-तीन महीने बाद भाग खड़ा होता है।'

इधर तो यह छः महीने से खाली पड़ा है अब लोग जान गये हैं, इस कारण कोई नहीं लेता।'

वृद्धा बोल उठी—"तो हमें ऐसा मकान नहीं चाहिए—आओ चलें।"

युवक बोला—"इतनी दूर आये हैं तो देख तो लो।"

इसी समय मकान के भीतर से एक व्यक्ति ने झाँक कर कहा—

"हाँ आइए।" तीनों प्राणी अन्दर गये। मकान देख कर युवक बोला—"मकान तो अच्छा है।"

वृद्धा बोली—"हाँ पर किस काम का?"

जो व्यक्ति मकान दिखा रहा था वह बोला "क्यों काम का क्यों नहीं?"

वृद्धा बोली—"हमें सब मालूम होगया है।"

"अच्छा! किसी ने कहा होगा कि मकान भुतहा है।"

"युयक बोला—"तो क्या यह बात झूठ है?"

"सोलहो आने झूठ। पड़ोसी चाहते हैं कि मकान खाली पड़ा रहे।"

"इससे पड़ोसियों का क्या फ़ायदा है?"

"एक तो खामखाह का द्वेष, दूसरे इस मकान की छत का उपयोग करते हैं।"

"तो क्या छत मिली हुई है?"

"जी हाँ! पाँच फीट की चहार-दीवारी है सो उसे फाँद कर आराम से लेटते-बैठते हैं।"

"लेकिन यह भी सुना है कि मकान छः महीने से खाली पड़ा है और जो आकर रहता है दो—चार महीने से अधिक नहीं ठहरता।"

"अरे साहब यही लोग बहका देते हैं। वैसे इसमें भूत न प्रेत।"

मकान देखकर तीनों व्यक्ति बाहर निकले तो आपस में सलाह करने लगे। युवक बोला—"पिता जी, मेरी तो राय है कि मकान ले लिया जाय।"

वृद्धा बोली—"नहीं बेटा, हमारा बाल-बच्चों का घर है—बहू के बच्चा होने वाला है ऐसी हालत में यह मकान नहीं लेना चाहिए।"

"आप तो माता जी खामखाह लोगों के बहकाने में आ गईं। यह सब झूठ है।"

"बहम तो पड़ गया। झूठ हो या सच। बहम का काम नहीं करना चाहिए।"

वृद्ध बोल उठा—"अब यहां बहम करने से क्या फायदा। घर चलो, वहाँ चल कर विचार करेंगे।"

"आप भी पिता जी! माता जी की बातों में आ गये। विचार क्या करना है?"

"यही कि लेना चाहिए या नहीं।"

"जब मकान पसन्द आ गया तब क्यों न लिया जाय? सिर्फ इसलिए कि लोग कहते हैं—भुतहा है। प्रथम तो यह बात बिल्कुल गलत मालूम होती है। और यदि हुआ भी तो, मैं उस भूत को भगा दूंगा।"

"क्या ठीक है! ऐसा कहीं का बड़ा ओझा है जो भूत भगा देगा।" माता बोली।

"खैर मैं अपनी जिम्मेदारी पर लिए लेता हूँ।"

यह कहकर युवक ने उस व्यक्ति से मकान लेना निश्चय कर लिया। उसके माता-पिता ताकते रह गये।

(२)

शान्तिस्वरूप एक ग्रेजुएट युवक है। एक कालेज में फिलासफी का प्रोफेसर है। उसके पिता महोदय सरकारी पेन्शनर हैं। परिवार में माता-पिता, पत्नी, एक चार बरस का लड़का, दो बरस की लड़की तथा एक छोटा भाई—जो बी० ए० का विद्यार्थी है—इस प्रकार छः प्राणी हैं।

शान्तिस्वरूप ने मकान ले लिया और अच्छा मुहूर्त देखकर उसमें आ गये। मकान में आने के एक सप्ताह बाद लड़की जीने से फिसल कर गिर पड़ी, उसके चोट आई और रक्तस्राव हुआ। पड़ोसी ने, जिसका नाम चन्दनलाल था और जो एक वकील का मुहर्रिर था अवसर

पाकर कहा—"देखिये मेरी बात ठीक निकली।"

शान्तिस्वरूप माथा सिकोड़ कर बोले—"क्या ठीक निकली ?"

"वही भूत वाली बात। लड़की को भूत ने पटक दिया।"

"क्या वाहियात बकते हो ? बच्चे तो गिरते-पड़ते रहते ही हैं।"

"ऐसे गिरते हैं कि खोपड़ी फट जाय ?"

"क्या हुआ, संयोग की बात है।"

"खैर अभी आप मेरी बात न मानें, परन्तु आगे चल कर मानना पड़ेगी।"

"देखा जायगा।"

एक मास व्यतीत होते होते लड़के को मोतीझरा निकल आया। चन्दनलाल ने शान्तिस्वरूप के पिता से कहा—"प्रोफेसर साहब तो मेरी बात मानते नहीं। अब आप देख लीजिए। एक महीने के अन्दर ही लड़की जीने से गिरी और अब लड़के को मोतीझरा निकल आया।"

"क्या बताऊं। आजकल के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लड़के अपने सामने किसी की मानते ही नहीं। मुझे तो भूत-प्रेतों में विश्वास है। हालाँकि अँग्रेजी मैंने भी पढ़ी है।"

"विश्वास होना चाहिए। अपने यहाँ प्रेत-योनि मानी गई है।"

"मैं भूत-प्रेतों की लीलाएं बहुत सुन चुका हूँ।"

"क्यों नहीं। आप वृद्ध आदमी हैं—आपने संसार देखा है। हमने तो सुना ही सुना है देखना तो अभी नसीब नहीं हुआ। इस मकान में है तो अवश्य पर हमें कभी न दिखाई पड़ा। एक यह भी बात है कि हम इसमें कभी रहे नहीं। रहते शायद कुछ दिखाई-सुनाई पड़ता। परन्तु जितने लोग इसमें रहे वे सब कहते थे कि इसमें है।"

"क्या बतावें, हमारा लड़का बड़ा हठी है, अन्यथा हम तो कभी न रहते।"

"जब तक उन्हें स्वयं अनुभव न होगा तब तक वह नहीं मानेंगे।"

"कुछ हानि उठाकर अनुभव हुआ तो किस काम का।"

"यही तो बात है। भगवान सब कुशल रक्खें।"

वृद्ध ने शान्तिस्वरूप से कहा—"बेटा, महीने भर के अन्दर दोनों बच्चों पर बीती। ऐसा तो कभी नहीं हुआ।"

"यह तो समय की बात है पिता जी। आज कल तो टायफायड चल ही रहा है। न जाने कितने आदमी इसी में पड़े हैं। कुछ केवल हमारे ही यहां थोड़े ही है।"

वृद्धा बोली—"यह अपने आगे ब्रह्मा की भी नहीं मानेगा। लड़कपन से ही जिद्दी है।"

"बिना भली-भाँति समझे-बूझे मैं कैसे मान लूँ ?"

"जब कुछ ऊँच-नीच हो गया तब माना तो किस काम का ?" पिता ने कहा।

"तो पिता जी, किसी के कह देने मात्र से तो मैं मान नहीं सकता। कोई चाहे कि मुझे केवल भयभीत कराकर भगादे सो डौल नहीं है। यदि हम ऐसा करें तो हमारी शिक्षा--दीक्षा को धिक्कार है।"

यह सुनकर माता-पिता चुप हो गये।

एक दिन शान्तिस्वरूप अपने परिवार सहित रात में पड़े सो रहे थे सहसा कुछ शब्द सुनकर उनकी माता जाग पड़ी। भली-भाँति जाग्रत होने पर उसे ऐसा जान पड़ा कि कोई कराह रहा है। उसने ध्यान से सुना तो शब्द छत की ओर से आता प्रतीत हुआ। वृद्धा को तुरन्त भूत का ध्यान आया। ध्यान आते ही उसको पसीना आ गया। उसने पुत्र को पुकारना चाहा पर आवाज न निकली। थोड़ी देर में कराहने की आवाज बन्द हो गई। वृद्धा बड़ा साहस करके उठी और उसने बिजली का स्विच खोला। रोशनी होने पर उसने देखा कि उसका पति तथा उसका छोटा पुत्र निद्रा में सो रहे हैं। उसकी चारपाई पर उसका पौत्र भी सो रहा है।

शान्तिस्वरूप, उनकी पत्नी तथा लड़की दूसरे कमरे में थे। वृद्धा ने पति को जगाकर वृत्तान्त बताया। वृद्ध इधर उधर देखकर बोला, 'तुमने स्वप्न तो नहीं देखा।"

"नहीं! मैं जाग रही थी।"

वृद्ध बोला—"अच्छा बत्ती बन्द करके लेटो मैं जागता रहूँगा।

"नींद तो अब मुझे भी नहीं आयगी।"

बत्ती बन्द करके पुनः सब लोग लेटे। पन्द्रह-बीस मिनट के पश्चात पुनः वैसी ही कराहने की आवाज आने लगी। वृद्धा ने धीमे स्वर में पति से पूछा, "सुन रहे हो?"

वृद्धा भयभीत स्वर में बोला, "सुन रहा हूँ जरा उठकर बत्ती जलाओ।"

वृद्ध ने पुनः बत्ती जलाई। रोशनी होते ही वह आवाज बन्द हो गई। वृद्ध ने उठकर भली भाँति चारों ओर देखा, परन्तु कुछ समझ में न आया।

बत्ती बुझाकर पुन लेटे। इसके पश्चात फिर आवाज नहीं सुनाई पड़ी—दोनों प्रतीक्षा करते करते सो गये।

प्रातःकाल उठकर वृद्धा ने शान्तिस्वरूप से यह बात कही। उसकी समझ में कुछ न आया। उसने कहा—"आज फिर देखो।"

उस दिन भी दो-तीन बार कराहने की तथा एक बार हँसने की आवाज आई।

शान्तिस्वरूप से यह बात बताई गई।

वह बोला—"अच्छा आज मैं स्वयं वहाँ लेटूँगा—तुम बहू के पास लेट जाना।"

उस दिन रात को कभी कराहने तथा कभी हँसने का शब्द सुनाई पड़ा। शान्तिस्वरूप से हर बार उठ कर रोशनी की तथा खूब देखा भाला परन्तु कुछ समझ में न आया।

दो दिन तक आवाज सुनने के पश्चात तीसरे दिन शान्तिस्वरूप ने एक बाँस की लम्बी सीढ़ी मँगवाई और उस कमरे में रखवा दिया। उस दिन रात में पहले बार जब आवाज आई तो शान्तिस्वरूप ने रोशनी की। आवाज बन्द हो गई। शान्तिस्वरूप बत्ती बुझाकर तथा एक छोटी टार्च हाथ में लेकर सीढ़ी पर गये और प्रतीक्षा करने लगे। सीढ़ी के निकट ही एक 'स्काई लाइट' था, उसी के निकट से शब्द आता प्रतीत होता था।

शान्तिस्वरूप को पन्द्रह मिनिट प्रतीक्षा करनी पड़ी। पन्द्रह मिनिट पश्चात पुनः वही आवाज आई! शान्तिस्वरूप ने ध्यान से सुना आवाज 'स्काई लाइट' से आ रही थी। उन्होंने अपने हाथ बढ़ा कर 'स्काई लाइट' के चारों ओर फिराया। सहसा उनके हाथ में कार्ड बोर्ड के चोंगे का अन्तिम भाग पड़ा। उन्होंने उसे पकड़ना चाहा, परन्तु दूसरे ही क्षण वह हाथ से निकल गया।

उस रात फिर कोई आवाज न आई। शान्तिस्वरूप ने सबेरे उठ कर 'स्काई लाइट' की परीक्षा की। 'स्काई लाइट' के ठीक सामने चन्दनलाल की एक खिड़की थी 'स्काई लाइट' तथा खिड़की में दो फीट का अन्तर था--दोनों मकानों के बीच दो फीट की एक बन्द गली थी। अब शान्तिस्वरूप की समझ में सब बात आ गई।

प्रातःकाल उठकर उन्होंने चन्दनलाल को बुलाकर कहा –"भूत का तो पता लग गया।"

चन्दन का मुख श्वेत पड़ गया उसने पूछा--"कैसे?"

"किसी तरह लग गया।"

"भूत आपको दिखाई पड़ा?"

"रात में तो नहीं दिखाई पड़ा परन्तु इस समय दिखाई पड़ रहा है।"

चन्दनलाल अवाक् होकर उनका मुंह ताकने लगा। शान्तिस्वरूप बोले--"अब यह इन्द्रजाल समाप्त कीजिए अन्यथा मामला पुलिस में दे दिया जायगा। समझे! हमें आप इस प्रकार डराकर नहीं भगा सकते।"

चन्दनलाल बिना कुछ उत्तर दिये ही सामने से हट गया। उस दिन से फिर कोई आवाज न सुनाई पड़ी और न कोई ऐसी घटना ही हुई जो किसी भूत-प्रेत के माथे मढ़ी जाती।

वृद्ध सब समझकर बोला--"बड़े बदमाश लोग हैं। परन्तु भूत होते तो हैं--यह मैं फिर कहूँगा।"

इक्केवाला

(१)

स्टेशन के बाहर आकर मैंने अपने साथी मनोहरलाल से कहा—"कोई इक्का मिल जाय तो अच्छा है—दस मील का रास्ता है।" मनोहरलाल बोले—"आइये इक्के बहुत हैं। उस तरफ खड़े होते हैं।"

हम दोनों चले। लगभग दो सौ गज चलने के पश्चात् देखा तो सामने एक बड़े वृक्ष के नीचे तीन चार इक्के खड़े दिखाई दिये। एक इक्का अभी आया था और उस पर से दो आदमी अपना असबाब उतार रहे थे। मनोहरलाल ने पुकारा—"कोई इक्का गंगापुर चलेगा।"

एक इक्के वाला बोला—"आइये सरकार, मैं ले चलूं कै सवारी हैं?"

"दो सवारी—गंगापुर का क्या लोगे।"

"जो सब देते हैं वही आप भी दे दीजियेगा।"

"आखिर कुछ मालूम तो हो।"

"दो रुपये का निरख (निर्ख) है।"

"दो रुपये ?—इतना अन्धेर !"

इसी समय, जो लोग अभी आये थे उनमें और उनके इक्के वाले में झगड़ा होने लगा। इक्के वाला बोला—"यह अच्छी रही, वहाँ से डेढ़ रुपया तय हुआ अब यहाँ बीस ही आने दिखाते हैं।"

यात्रियों में से एक बोला—"हमने पहले ही कह दिया था कि हम बीस आने से एक पैसा अधिक न देंगे।"

"मैंने भी तो कहा था कि डेढ़ रुपये से एक पैसा कम न लूंगा।"

"कहा होगा हमने तो सुना नहीं।"

"हाँ सुना नहीं—ऐसी बात आप काहे को सुनेंगे।"

"अच्छा तुम्हें बीस आने मिलेंगे—लेना हो तो लो नहीं अपना रास्ता देखो।"

इक्के वाला, जो हृष्ट पुष्ट तथा गौरवर्ण था, अकड़ गया—बोला, "रास्ता कैसे देखें, कोई अन्धेर है। ऐसे रास्ता देखने लगें तो बस कमाई कर चुके। बाएं हाथ से इधर डेढ़ रुपये रख दीजिए तब आगे बढ़ियेगा। वहाँ तो बोले अच्छा जो तुम्हारा रेट होगा वह देंगे—अब यहाँ कहते हैं रास्ता देखो—अच्छे मिले।"

हम लोग यह कथोपकथन सुन कर इक्का करना भूल गये और उनकी बातें सुनने लगे। एक यात्री बड़ी गम्भीरता पूर्वक बोला—"देखो जी, यदि तुम भलमंसी से बातें करो तो दो—चार पैसे हम अधिक दे सकते हैं, तुम गरीब आदमी हो—लेकिन जो झगड़ा करोगे तो एक पैसा न मिलेगा।"

इक्के वाला किंचित् मुस्करा कर बोला—"दो चार पैसे! ओफ ओह—आप तो बड़े दाता मालूम होते हैं। जब चार पैसे देते हो तो चार आने ही क्यों नहीं दे देते।"

"चार आने हमारे पास नहीं हैं।"

"नहीं हैं—अच्छी बात है तो जो आपके पास हो वही दे दीजिए–

न हों न दीजिये और जरूरत हो तो एकाध रुपया मैं आपको दे सकता हूँ।"

"तुम बेचारे क्या दोगे-चार-चार पैसे के लिए तो झूठ बोलते हो और बेईमानी करते हो।"

"अरे बाबू जी, लाखों रुपये के लिये तो मैंने बेईमानी की नहीं—चार पैसे के लिए बेईमानी करूँगा? बेईमानी करता तो इस समय इक्का न हाँकता होता—खैर आप जो देना हो दीजिए—नहीं जाइये मैंने किराया भर पाया।"

उन्होंने बीस आने निकाल कर दिये। इक्केवाले ने चुपचाप ले लिये।

उस इक्के वाले का आकार प्रकार, उसकी बात-चीत से मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्य इक्के वालों की तरह यह साधारण आदमी नहीं है। इसमें कुछ विशेषता अवश्य है। अतएव मैंने सोचा कि यदि हो सके तो गंगापुर इसी के इक्के पर चलना चाहिए। यह सोच कर मैंने उससे पूछा—"क्यों भाई, गंगापुर चलोगे?"

वह बोला—"हाँ! हां! आइये।"

"क्या लोगे?"

"वही डेढ़ रुपया!"

मैंने सोचा अन्य इक्के वाले तो दो रुपये माँगते थे, यह डेढ़ रुपया कहता है, आदमी सच्चा मालूम होता है। यह सोच कर मैंने कहा—"अच्छी बात है चलो डेढ़ रुपया देंगे।"

हम दोनों सवार होकर चले। थोड़ी दूर चलने पर मैंने पूछा—"ये दोनों कौन थे?" इक्के वाले ने कहा—"नारायण जाने कौन थे, परदेसी मालूम होते हैं—लेकिन परले सिरे के झूठे और बेईमान! चार आने के लिए प्राण तजे दे रहे थे।"

मैंने पूछा—तो क्या सचमुच तुमसे डेढ़ रुपया ही तय हुआ था?"

"और नहीं क्या आप झूठ समझते है ? बाबू जी, यह पेशा ही बदनाम है आपका कोई कसूर नहीं। इक्के, टांगेवाले सदा झूठे और बेई-मान समझे जाते हैं। और होते भी हैं—अधिकतर तो ऐसे ही होते हैं। इन्हें चाहे आप रुपये की जगह सवा रुपया दीजिये तब भी सन्तुष्ट नहीं होते।"

मैंने पूछा—"तुम कौन जाति हो ?"

"मैं ? मैं तो सरकार वैश्य हूँ।"

"अच्छा ! वैश्य होकर इक्का हाँकते हो ?"

"क्यों सरकार, इक्का हाँकना कोई बुरा काम तो है नहीं।"

"नहीं मेरा मतलब यह नहीं है कि इक्का हाँकना कोई बुरा काम है। मैंने इसलिए कहा कि वैश्य तो बहुधा व्यापार करते हैं।"

",यह भी तो व्यापार ही है।"

"हां है तो व्यापार ही।"

मैं मन ही मन अपनी इस बेतुकी बात पर लज्जित हुआ। अतएव मैंने प्रसंग बदलने के लिए कहा–"कितने दिनों से यह काम करते हो ?"

"दो वर्ष हो गये।"

"इसके पहले क्या करते थे।"

यह सुनकर इक्के वाला गम्भीर होकर बोला—"क्या बताऊँ, क्या करता था।"

उसकी इस बात से तथा यात्रियों से उसने जो बातें कही थीं उनका तारतम्य मिला कर मैंने सोचा—इस का जीवन रहस्यमय मालूम होता है। यह सोचकर मैंने उससे पूछा—"कोई हर्ज न समझो तो बताओ।"

"हर्ज तो कोई नहीं है बाबू जी ! पर मेरी बात पर लोगों को विश्वास नहीं होता, इक्के वाले बहुधा परले सिरे के गप्पी समझे जाते हैं—इसलिए मैं किसो को अपना हाल सुनाता नहीं।"

"खैर मैं उन आदमियों में नहीं हूँ यह तुम विश्वास रक्खो।"

"अच्छी बात है—सुनिये—"

(२)

मैं अगरवाला बनिया हूँ मेरा नाम श्यामलाल है। मेरा जन्म स्थान मैनपुरी है। मेरे पिता व्यापार करते थे। जिस समय मेरे पिता की मृत्यु हुई उस समय मेरी उम्र १५ साल की थी। पिता के मरने पर घर-गृहस्थी का सारा भार मेरे ऊपर पड़ा। मैंने एक वर्ष तक काम-काज चलाया। पर मुझे व्यापार का अनुभव न था, इस कारण घाटा हुआ और मेरा सब काम बिगड़ गया। अन्त को और कोई उपाय न देख मैंने वहीं एक धनी आदमी के यहाँ नौकरी कर ली। उस समय मेरे परिवार में मेरी माता और एक छोटी बहिन थी। जिनके यहाँ मैंने नौकरी की थी वह थे तो मालदार परन्तु बड़े कन्जूस थे। ऊपर से देखने में वह एक मामूली हैसियत के आदमी दिखाई पड़ते थे परन्तु लोग कहते थे कि उनके पास एक लाख के लगभग नकद रुपया है। उस समय मैंने लोगों की बात पर विश्वास नहीं किया था, क्योंकि घर की हालत देखने से किसी को यह विश्वास नहीं हो सकता था कि उनके पास इतना रुपया होगा। उनकी उम्र उस समय चालीस से ऊपर थी। उन्होंने दूसरी शादी की थी और उनकी पत्नी की उम्र बीस वर्ष के लगभग थी। पहली स्त्री से उनके एक लड़का था वह जवान था और उसका विवाह इत्यादि सब हो चुका था। उसका नाम शिवचरणलाल था। पहले तो वह अपने पिता के पास ही रहता था परन्तु जब पिता ने दूसरा विवाह किया तो वह नाराज होकर अपनी स्त्री सहित फर्रुखाबाद चला गया—यहाँ उसने एक दूकान कर ली और वहीं रहने लगा।

उन दिनों मुझे कसरत करने का शौक था इसलिए मेरा बदन बहुत अच्छा बना हुआ था। कुछ दिनों पश्चात् मेरी मालकिन मेरी

बहुत खातिर करने लगीं। खूब मेवा मिठाई खिलाती थीं और महीने में दस बीस रुपये नकद दे देती थीं। इस कारण मेरे दिन बड़ी अच्छी तरह कटने लगे। मैं मालकिन के खातिर करने का असली मतलब उस समय नहीं समझा। मैंने जो समझा वह यह था कि मेरी सेवा से प्रसन्न होकर तथा मुझे गरीब समझ कर वह ऐसा करती हैं। आखिर जब एक दिन उन्होंने मुझे एकान्त में बुलाकर छेड़-छाड़ की तब मेरी आंखें खुलीं। मुझे आरम्भ से ही इन कामों से नफरत थी। मैं इन बातों को जानता भी नहीं था न कभी ऐसी सङ्गत ही में रहा था जिससे इन बातों का ज्ञान प्राप्त होता। मैं उस समय जो जानता था वह यह था कि आदमी को खूब कसरत करना चाहिए और स्त्रियों से बचना चाहिए। जब मालकिन ने छेड़-छाड़ की तो मुझे उनके प्रति अनुराग उत्पन्न होने के बदले भय मालूम हुआ। मेरा कलेजा धड़कने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह चुड़ैल है और मुझे भक्षण करना चाहती है।

इक्के वाले की इस बात पर मेरे साथी मनोहरलाल बहुत हँसे—बोले—"तुम तो बिल्कुल बुद्धू थे जी।"

श्यामलाल बोला—अब जो समझिए—"परन्तु बात ऐसी ही थी। खैर मैं अपना हाथ छुड़ाकर उनके सामने से भाग आया। अब मुझे उनके सामने जाते डर मालूम होने लगा। यही खटका लगा रहता था कि कहीं किसी दिन फिर न पकड़ लें। तीन चार दिन बाद वही हुआ। उन्होंने अवसर पाकर फिर मुझे घेरा। उस दिन मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया कि यदि वह ऐसी हरकत करेंगी तो मैं मालिक से कह दूंगा। बस उसी दिन से मेरी खातिर बन्द हो गई। केवल खातिर बन्द होकर रह जाती वहाँ तक गनीमत थी, परन्तु अब उन्होंने मुझे तंग करना आरम्भ किया। बात—बात पर डांटती थीं। कभी मालिक से शिकायत कर देती थीं। आखिर जब एक दिन मालिक ने मुझे मालि-किन के कहने से बहुत डांटा तो मैंने उन्हें अलग ले जाकर कहा—लाला

जी, मेरा हिसाब कर दीजिए, मैं अब आपके यहाँ नौकरी नहीं करूँगा। लाला जी लाल-पीली आँखें करके बोले—एक तो कसूर करता है और उस पर हिसाब माँगता है। मुझे भी तेहा आ गया। मैंने कहा—कसूर किस सुसरे ने किया है। लाला जी बोले—तो क्या मालकिन झूठ कहती हैं? मैंने कहा—बिल्कुल झूठ! लाला जी ने कहा-तेरे से उनकी शत्रुता है क्या? मैंने कहा—हाँ शत्रुता है। उन्होंने पूछा-क्यों? मैंने कहा—अब आप से क्या बताऊँ? आप उसे भी झूठ मानेंगे। इसलिए सबसे अच्छी बात यही है कि मेरा हिसाब कर दीजिए। मेरी बात सुनकर लाला जी के पेट में खलबली मची। उन्होंने कहा—पहले यह बता कि क्या बात है? मैंने कहा—उसके कहने से कोई फायदा नहीं—आप मेरा हिसाब दे दीजिए परन्तु लाला मेरे पीछे पड़ गये। मैंने विवश होकर सब हाल बता दिया। मुझे भय था कि लाला को मेरी बात पर विश्वास न होगा; पर ऐसा नहीं हुआ। लाला ने मेरी पीठ पर हाथ फेर कर कहा, शाबास श्यामलाल, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम आनन्द से रहो, तुम्हारी तरफ कोई आँख उठाकर नहीं देख सकेगा। बस उस दिन से मैं निद्वंन्द्व हो गया। अब अधिकतर मैं मालिक के पास बाहर ही रहने लगा भीतर बहुत कम जाता था। इसके पश्चात् भी मालकिनने मेरे निकलवाने केलिए चेष्टा की, पर लाला जी ने उनकी एक न सुनी,आखिर वह भी हारकर बैठ रहीं।

इस प्रकार एक वर्ष और बीता। इस बीच में लाला के एक रिश्तेदार—जो उनके चचेरे भाई होते थे—बहुत आने-जाने लगे। उनकी उम्र पच्चीस छब्बीस वर्ष के लगभग होगी। शरीर के मोटे-ताजे और तन्दुरुस्त आदमी थे। पहले तो मुझे उनका आना-जाना कुछ नहीं खटका पर जब उनका आना—जाना हद से अधिक बढ़ गया और मैंने देखा कि वह मालकिन के पास घन्टों बैठे रहते हैं तो मुझे सन्देह हुआ कि

हो न हो दाल में कुछ काला अवश्य है। लाला जी अधिकतर दूकान में रहने के कारण यह बात न जानते थे। घर का कहार भी मालकिन से मिला हुआ मालूम होता था इसलिए वह भी चुप्पी साधे था। एक मैं ही ऐसा था जिसके द्वारा लाला को यह खबर मिल सकती थी। अन्त में मैंने इस रहस्य का पता लगाने पर कमर बांधी और एक दिन अपनी आँखों उनकी पापमय लीला देखी। बस उसी दिन मैंने लाला को खबर कर दी। लाला उस बात को चुपचाप पी गये। आठ दस रोज बाद लाला ने मुझे बुलाकर कहा—श्यामशाल तेरी बात ठीक निकली—आज मैंने भी देखा। जिस दिन तूने कहा था उसी दिन से मैं इसकी टोह में था—आज तेरी बात की सत्यता प्रमाणित हो गई अब बता क्या करना चाहिए। मैंने कहा—मैं क्या बताऊं आप जो उचित समझे करें। लाला ने पूछा—तेरी क्या राय है। मैंने इस उम्र में विवाह करके बड़ी भूल की पर अब इसका उपाय क्या है? मैंने कहा—अपने भाई साहब का आना—जाना बन्द कर दीजिए—यही उपाय है और हो ही क्या सकता है? लाला ने सोच कर कहा—हाँ यही ठीक है। जी में तो आता है कि इस औरत को निकाल बाहर करूँ, पर इसमें बड़ी बदनामी होगी। लोग हँसेंगे कि पहले तो विवाह किया फिर निकाल दिया।

मैंने कहाँ—हाँ यह तो आपका कहना ठीक है बस उनका आना-जाना बन्द कर दीजिए। अतएव उसी दिन से यह हुक्म लग गया कि लाला जी की अनुपस्थिति में बाहर का कोई आदमी—चाहे रिश्तेदार हो, चाहे कोई हो—अन्दर न जाने पावे। और वह काम मेरे सिपुर्द किया गया। उस दिन से मैंने उन्हें घँसने न दिया। इस पर उन्होंने मुझे प्रलोभन भी दिये धमकी भी दी। पर मैंने एक न सुनी। मालकिन ने भी बहुत कुछ कहा सुना, खुशामद की, पर मैं जरा भी न पसीजा। कहरवा भी बोला—तुमसे क्या मतलब है—जो होता है होने दो। मैंने उससे कहा, सुनता है बे तू तो पक्का नमक हराम है, जिसका

नमक खाता है उसी के साथ दगा करता है। खैरियत इसी में है कि चुप रह—नहीं तुझे भी निकाल बाहर करूंगा।

यह सुन कर कहार राम चुप हो गये।

थोड़े दिन बाद लाला के उन रिश्तेदार ने आना-जाना बिल्कुल बन्द कर दिया। अब वह लाला के पास भी नहीं आते थे। मैंने भी सोचा—चलो अच्छा हुआ आँख फूटी पीर गई।

इसके छः महीने बाद एक दिन लाला को हैजा हो गया। मैंने बहुत दौड़-धूप की, इलाज इत्यादि कराया, पर कोई फायदा न हुआ। लाला जी समझ गये कि अन्त समय निकट है। अतएव उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—श्यामलाल, मैं तुझे नौकर नहीं पुत्र समझता हूँ। इसलिए मैं अपनी कोठरी की ताली तुझे देता हूँ। मेरे मरने पर वह ताली मेरे लड़के को देना और जब तक वह न आ जाय तब तक किसी को कोठरी न खोलने देना—बस तुझसे मैं इतनी अन्तिम सेवा चाहता हूँ।

मैंने कहा—"ऐसा ही होगा, चाहे मेरे प्राण ही क्यों न चले जायँ, पर मैं इसमें न अन्तर न पड़ने दूंगा। इसके पश्चात उन्होंने मुझे पाँच हजार रुपया नकद दिये और बोले—यह तो मैं तुझे देता हूं। मैं लेता न था पर उन्होंने कहा—तू यदि यह न लेगा तो मुझे दुख होगा। अतएव मैंने ले लिये। इसके चार घण्टे बाद उनका देहान्त हो गया। उनके लड़के को उनके मरने के तीन घण्टे पहले तार दे दिया गया था। उनके मरने के पाँच घण्टे बाद वह मैनपुरी पहुंचा था। उनका देहान्त रात को आठ बजे हुआ और वह रात के दो बजे के निकट पहुँचा था। लाला के मरने के बाद उनकी स्त्री ने मुझ से कहा-- कोठरी की ताली लाओ। मैंने कहा—"ताली तो लाला, शिवचरण-लाल के हाथ में देने कह गये हैं, मैं उन्हीं को दूंगा।" उन्होंने कहा—अरे मूर्ख इससे मुझे क्या मिलेगा। कोठरी खोल कर रुपया निकाल ले—मुझे मत दे, तू ले ले, मैं भी तेरे साथ रहूँगी, जहाँ तू ले चलेगा

तेरे साथ चलूंगी। मैंने कहा—मुझसे यह नहीं होगा। मैं तुम्हें ले जाकर रक्खूँगा कहाँ ? दूसरे तुम मेरे उस मालिक की स्त्री हो जो मुझे अपने पुत्र के समान मानता था। मुझसे यह न होगा कि तुम्हें अपनी स्त्री बना कर रक्खूं।

बाबू जी, एक घण्टे तक उसने मुझे समझाया, रोई भी, हाथ भी जोड़े; परन्तु मैंने एक न मानी। आखिर उसने अन्य उपाय न देख अपने देवर अर्थात उन्हीं को बुलवाया जिनका आना जाना मैंने बन्द कराया था। उन्होंने आते ही बड़ा रुआब झाड़ा। मुझे पुलिस में देने की धमकी दी। पर मैं इससे भयभीत न हुआ। तब वह ताला तोड़ने पर आमादा हुए। मैं कोठरी के द्वार पर एक मोटा डण्डा लेकर बैठ गया और मैंने उनसे कह दिया कि जो कोई ताला तोड़ने आवेगा पहले मैं उसका सिर तोड़ूगा इसके बाद जो होगा देखा जायगा। बस फिर उनका साहस न हुआ। इसी रगड़े-झगड़े में रात के दो बज गये और शिवचरणलाल आ गये। मैंने उनको तालीं दे दी और सब हाल बता दिया।

बाबूजी जब कोठरी खोली गई तो उसमें से साठ हजार रुपये नकद निकले। इन रुपयों का हाल लाला के अतिरिक्त और किसी को भी मालूम न था। यदि मैं मालकिन की बात मान कर बीस पच्चीस हजार रुपये भी निकाल लेता तो किसी को भी सन्देह न होता; पर मेरे मन में इस बात का विचार एक क्षण के लिए भी पैदा न हुआ। मेरी माँ रोज रामायण पढ़ कर मुझे सुनाया करती थीं और मुझे यही समझाया करती थीं, देख बेटा पाप और बेईमानी से सदा बचना-इससे तुझे कभी दुःख न होगा। उनकी यह बात मेरे जी में बसी हुई थी और इसीलिए मैं बच गया। इसके बाद शिवचरनलाल ने भी मुझे एक हजार रुपया दिया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि तुम मेरे पास रहो। पर लाला के मरने से और जो अनुभव मुझे हुए थे उनके

कारण मैंने उनके यहाँ रहना उचित नहीं समझा। लाला की तेरहीं होने के बाद मैंने उनकी नौकरी छोड़दी। छः हजार रुपये में से दो हजार मैंने अपनी बहिन के ब्याह में खर्च किये और दो हजार अपने ब्याह में खर्च किये। एक हजार लगा कर एक दूकान की और एक हजार बचा कर रक्खा। पर दूकान में फिर घाटा हुआ। तब मैंने मैनपुरी छोड़ दी और इधर चला आया। नौकरी करने की इच्छा नहीं थी। इसलिए मैंने इक्का घोड़ा खरीद लिया और किराये पर चलाने लगा—तब से बराबर यही काम कर रहा हूँ। इसमें मुझे खाने भर को मिल जाता है—अपने आनन्द से रहता हूँ—न किसी के लेने में हूँ न देने में। अब बताइये, वह बाबू कहते थे कि चार आने पैसे के लिए मैं बेईमानी करता हूँ। अब मैं उनसे क्या कहता। यह तो दुनियाँ है, जो जिसकी समझ में आता है कहता है। मैं भी सब सुन लेता हूँ। इक्के वाले बदनाम हैं इसलिए मुझे भी ये बातें सुननी पड़ती हैं।"

श्यामलाल की आत्म-कहानी सुनकर मैं कुछ देर तक स्तब्ध बैठा रहा। इसके पश्चात मैंने कहा—"भाई तुम तो दर्शनीय आदमी हो, तुम्हारे तो चरण छूने को जी चाहता है।"

श्यामलाल हँसकर बोला—"अजी बाबूजी, क्यों काँटों में घसीटते हो। मेरे चरण और आप छूवें—राम! राम! मैं कोई साधू थोड़ा ही हूँ।"

मैंने कहा—"और साधू कैसे होते हैं, उनके कोई सुर्खाब का पर तो लगा होता नहीं। सच्चे साधू तो तुम्हीं हो।" यह सुनकर श्यामलाल हंसने लगा। इसी समय गङ्गापुर आ गया और हम लोग इक्के से उतर कर अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चल दिये।

रास्ते में मैंने मनोहरलाल से कहा—"इस संसार में अनेकों लाल गुदड़ी में छिपे पड़े हैं। उन्हें कोई जानता तक नहीं।"

मनोहरलाल—"जी हाँ ! और नामधारी ढोंगी महात्मा ईश्वर की तरह पूजे जाते हैं।"

* * * *

बात बहुत पुरानी हो गई है पता नहीं महात्मा श्यामलाल अब भी जीवित हैं या नहीं, परन्तु अब भी जब कभी मुझे उसका स्मरण हो आता है तो मैं उसकी काल्पनिक मूर्ति के चरणों में अपना मस्तक नत कर देता हूँ।

निर्बल की विजय

संध्या का अन्धकार हो गया था, परन्तु फिर भी पौलैंड के वारसा नगर की सड़कें अन्धकार में डूबी हुई थीं। वायुयानों के आक्रमण के भय से सारा नगर अन्धकार में डूबा हुआ था। केवल घरों के भीतर ही आलोक दिखाई पड़ता था। ऐसे ही समय में वारसा का एक छोटा सा परिवार बड़ी चिन्तित दशा में बैठा हुआ था। इस परिवार में एक प्रौढ़ व्यक्ति जिसका नाम स्केविञ्जकी था, उसकी पत्नी मेरीयूका, एक अष्टादश वर्षीय कन्या पोला तथा एक चतुर्दश वर्षीय पुत्र जेकब था।

कुछ देर तक नीरवता छाई रही। सहसा स्केविञ्जकी एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बोला—"मेरी समझ में तो तुम बच्चों को लेकर अपने पिता के पास चली जाओ। मैं अस्पताल में चला जाऊंगा। यहां रहने में खतरा है।"

मेरीयूका बोली—"नहीं स्केव! मुझसे यह न होगा। हम दोनों साथ ही मरेंगे। पोला और जेकब को चाहो तो भेज दो।"

पोला मुँह फुलाकर बोली—"मैं नहीं जाऊँगी, जेकब को भेज दो। मैं तो यहाँ अस्पताल में काम कर रही हूँ। घायलों की सेवा छोड़कर मैं चली जाऊँ! वाह!"

"मैं अकेला कहीं नहीं जाऊँगा। तू यहाँ रहे और मैं चला जाऊँ—अच्छी कही!" जेकब ने पोला से कहा।

स्केविञ्जकी पत्नी से बोला—"जब तक तुम नहीं जाओगी मेरीयूका—तब तक कोई नहीं जायगा। वारसा पर दो चार दिनों में आक्रमण होने ही वाला है अभी निकल जाने का समय है। मेरी जो कहो, तो मुझे तो इस समय युद्धस्थल में होना चाहिए था, मगर इस गठिया दर्द के मारे मैं यहाँ अपाहिजों की तरह पड़ा हूँ—जब कि नगर के सभी आदमी देश पर बलिदान होने के लिए कमर बाँधे घूम रहे हैं। अपनी इस विवशता पर मुझे कितना दुख है ओफ, जी चाहता है गला काट लूँ!"

जेकब बोला—"पिता जी तुम्हें छोड़ कर कोई कहीं न जायगा। क्या बताऊँ यदि मैं दो तीन बरस और बड़ा होता तो मैं फौज में भर्ती कर लिया जाता।" स्केविञ्जकी दीर्घ-निश्वास छोड़ कर बोला-"भगवान की यही इच्छा है कि हमारा प्यारा देश हमसे छीना जाय और हम लोग बैठे ताका करें। देश की रक्षा में उँगली तक न हिला सकें। ओह! धन्य हैं वे लोग जो आज मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर रहे है। मेरे भाग्य में यह सौभाग्य नहीं है। अच्छा जैसी प्रभु की मर्जी!" यह कहते कहते स्केव की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

कुछ देर तक गम्भीरता छाई रही। सब लोग मूर्तिवत बैठे हुये अपने विचारों में मग्न थे। इसी समय किसी ने द्वार खटखटाया। माता ने पुत्री की ओर देखा। पोला उठकर द्वार खोलने गई। द्वार खोलने पर उसने देखा कि एक चौबीस पचीस वर्ष का सुन्दर युवक सैनिक

वेश में खड़ा है। पोला के मुँह से हठात् निकला "मेंशीज़!" मेशीज़ मुस्करा कर बोला—"हां मैं हूँ पोला।"

पोला द्वार छोड़कर बगल में हो गई और सिर झुकाकर बोली—"आओ अन्दर आओ!"

मेशीज पोला को देखता हुआ अन्दर आया। पोला भी द्वार बन्द करके उसके पीछे पीछे आई। मेशीज ने स्केव तथा मेरीयूका को प्रणाम किया और जेकब से बोला—"मजे में हो?" जेकब ने मुस्करा कर मेशीज़ से हाथ मिलाया।

स्केब ने पहला प्रश्न किया—"कहो क्या समाचार है, मेशीज़?"

"समाचार अच्छे नहीं हैं। हमारी फौजें पीछे हटती चली जा रही हैं। और वह तो होना ही है। जर्मन फौजों के सामने हम लोगों के लिये केवल अपने प्राणों की आहुति देने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है?"

"और यही सब से बढ़ कर उपाय है।" स्केब ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

"आपकी गठिया कैसी है?"

"यह तो मेरे जन्म भर के पापों का फ़ल है मेशीज, जो इस समय मुझे मिल रहा है। ऐसे नाजुक समय पर इस रोग का उभरना—ओफ! बहुत बड़े पापों का फल है!!"

"आज मैं रणक्षेत्र में जा रहा हूँ।"

पोला कुर्सी पर हाथ रक्खे खड़ी थी मेंशीज की बात सुनकर वह चौंक पड़ीं। उसके रक्तिम कपोलों का रंग फीका पड़ गया। मेरीयूका भी चौंकी। उसने पूछा—"आज ही?"

"हां आज ही दो घन्टे बाद! हमें दो घण्टे की छुट्टी मिली है। उसके बाद हमारी टुकड़ी रवाना हो जायगी। मैंने सोचा आप लोगों से भी मिल लूँ क्योंकि जीवित लौटने की आशा तो बहुत ही कम

है।" यह कहकर मेशीज हँस पड़ा और हँसते हुए एक खाली कुर्सी पर बैठ गया।

"जो मातृभूमि की रक्षा में अपने प्राण देंगे वे ही तो देश के सच्चे सपूत हैं। हमारे जैसे लोग तो कुपूत ही है—न कुछ सेवा ही कर सके और अन्त में देश को पराधीन होते देखेंगे। मेशीज ! तुम मेरा खात्मा करके जाओ तो तुम्हें बड़ा पुण्य हो !" स्केब ने विषाद्-पूर्ण स्वर से कहा !

मेशीज गम्भीर होकर बोला—"इतने निराश होने की आवश्यकता नहीं है। बाद को देश को स्वाधीन करने के लिए भी तो सपूतों की आवश्यकता पड़ेगी। और आप सपूत हैं। इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है।"

"कम से कम आज इस समय हमारे साथ भोजन करलो।" मेरी-यूका ने कहा।

"हाँ ! हाँ ! क्या हर्ज है।"

मेरीयूका उठी और पोला से बोली—"चलो बेटी, खाने का बन्दो-बस्त करें।"

दोनों चली गईं।

(२)

एक घन्टे पश्चात मेशीज बिदा हो रहा था।

पोला भी कपड़े पहन कर तैयार थी। उसे तैयार देख कर मेशीज ने पूछा—"तुम कहाँ जा रही हो।"

"अस्पताल ! रात की डयूटी है।"

"तब तो बड़ा अच्छा है। मैं तुम्हें अस्पताल पहुँचा कर चला जाऊँगा।"

"सबने अश्रुपूर्ण नेत्रों से मेशीज को विदा किया। जेकब बोला—"आपको फील्ड पर जाते देख मुझे ईर्षा होती है।"

मेशीज हँसकर बोला—"घबराओ नहीं तुम्हें भी अवसर मिलेगा।"

मेशीज और पोला घर के बाहर आये। दोनों चुपचाप अस्पताल की ओर चलने लगे। पश्चिम दिशा से तोपों की गड़गड़ाहट का क्षीण शब्द सुनाई पड़ रहा था। आकाश में वायुयानों की घर्राहट गूंज रही थी। कभी कभी सैनिकों से भरी हुई मोटर लारियाँ तेजी से दौड़ती हुई निकल जाती थीं। थोड़ी देर में ये दोनों अस्पताल के द्वार पर पहुँच गये। द्वार के एक बगल में खड़े होकर मेशीज ने पोला से कहा—"पोला! शायद अब यह अन्तिम ही मिलन है। जीवित रहते हुये कोई भी योद्धा रणक्षेत्र से नहीं लौटेगा।" अस्पताल के द्वार पर लगे हुये बिजली के लैम्प की रोशनी में मेशीज ने देखा कि पोला के नेत्र अश्रुसिक्त हैं। मेशीज पुनः बोला—"यदि जीवित रहा तब तो लौटकर तुम से विवाह करूंगा ही और यदि—।"

पोला भयभीत होकर बोली—"ऐसा न कहो मेशीज! जो होना होगा वह तो होगा ही, परन्तु मैं इस समय ऐसी मनहूस बात नहीं सुन सकती। भगवान इस जर्मनों को गारत करें। बैठे-बिठाये हम निर्दोषों के सुखी जीवन को हाहाकार और चीत्कार का जीवन बना दिया। क्या संसार से न्याय उठ गया? हाँ अवश्य ही उठ गया है। तभी तो कोई भी निर्दोष केवल इसलिये चैन से नहीं बैठने पाता कि वह कमजोर है। भला हमने जर्मनों का क्या बिगाड़ा है जो वे हमें नष्ट-भ्रष्ट किये दे रहे हैं?"

"इन बातों पर विचार करने का यह समय नहीं है, पोला! मुझे शीघ्र ही अपनी टुकड़ी में पहुँचना है। अतएव—।"

इतना कहकर मेशीज ने पोला को अपने अङ्क में ले लिया। कुछ क्षणों तक दोनों प्रेमालिंगन में रहे। तत्पश्चात मेशीज 'विदा' कहकर एकदम तेजी के साथ एक ओर चल दिया। पोला रुँधे हुए कण्ठ से

बोली—"भगवान तुम्हारी रक्षा करे !" पोला रूमाल से आँखें पोंछती हुई अस्पताल के अन्दर चली गई।

नर्सों के कमरे में जाकर उसने 'नर्स' की पोशाक पहनी, तत्पश्चात् घायलों के उस वार्ड में पहुँची जहाँ उसकी ड्यूटी थी। जिस नर्स के स्थान पर इसे काम करना था उसका नाम 'आना' था। आना पोला को देख कर बोली "आज कुछ जल्दी आगईं ?"

क्लॉक की ओर देखकर पोला बोली—"हाँ आध घण्टा पहले आ गई। घर में जी नहीं लगा इससे चली आई।"

"जरा इस पन्द्रह नम्बर बिस्तरे के रोगी पर ध्यान रखना-सन्निपात में है। इसका बचना कठिन दिखाई पड़ता है। अच्छा जाती हूँ।"

"जाओ ! आज मेशीज 'फ्रण्ट' पर गया।" आना रुक गई। उसके मुंह से निकला—"अच्छा, तभी।"

पोला एकदम रो पड़ी। आना ने उसके गले में बांह डाल कर कहा—"ऐं। मरीजों के सामने रोती हैं—बुरी बात !"

इतना कह कर वह पोला को 'हाता' के बाहर बरामदे में ले आई। पोला आना के कन्धे पर सिर रखकर कुछ देर तक रोती रही। आना ने उसे सान्त्वना देकर शांत किया। पोला दांत पीसती हुई बोली—"एक पागल आदमी के पागलपन की बदौलत आज हमारे प्यारे हमसे जबरदस्ती छुड़ाये जाकर मौत के कराल गाल में ढकेले जा रहे हैं। और जगत का स्वामी ईश्वर चुपचाप बैठा यह सब देख रहा है। कौन कहता है कि ईश्वर है। यह सब भ्रम है, सब धोखा है—ईश्वर कहीं नहीं, कोई नहीं।"

आना ने पोला के मुख पर हाथ रख दिया और कहा—"चुप ! ऐसी कुफ्र की बातें नहीं बकनी चाहिए। बलवान का पागलपन सदैव भयानक होता है। ईश्वर है और अवश्य है। अत्याचारियों को वह अवश्य दण्ड देता है। परन्तु उसके कानून में जबरदस्ती नहीं है।"

"हाँ, दण्ड देता है—जब हजारों निर्दोषों का सर्वनाश हो जाता

है। यह अच्छा दण्ड है।"

"बिना पाप के दण्ड कैसे दिया जा सकता है पोला ! जब पापों का घड़ा भर जाता है तभी तो पापी दण्डनीय होता है ?"

इसी समय भीतर एक रोगी चिलाने लगा। आया बोली—"वही १५ नं० वाला है।"

दोनों दौड़कर अन्दर गईं और दोनों ने उसे शान्त किया। इसके पश्चात आना बोली—"पोला धैर्य्य रक्खो। सभी योद्धा नहीं मरते—बहुतेरे बच भी जाते हैं। भगवान से प्रार्थना करो कि उन बचने वालों में मेशीज भी। अच्छा मैं जाती हूँ।" आना चली गईं। पोला अन्य नर्सों से बात करने लगी।

(३)

दो दिन के पश्चात दोपहर में पोला अपने परिवार के साथ बैठी बातें कर रही थी। इसी समय सहसा एलार्म (खतरे के घण्टे) बजने लगे।

"क्या बात है !" कह कर पोला ने दौड़कर खिड़की खोली और बाहर की ओर झांकने लगी।

इसी समय एक मोटर, जिसमें लाउडस्पीकर लगा था, उधर से निकली। लाउडस्पीकर से आवाज निकल रही थी—"हवाई आक्रमण-होशियार !" सड़क पर लोग बेहतासा इधर उधर भागे जा रहे थे। जिनके पास "गेसमास्क" थीं वे जल्दी जल्दी उनको चढ़ाते हुए भागते जा रहे थे।

पोला ने खिड़की बन्द कर दी। स्केव ने शान्ति-पूर्वक कहा—"मास्क लगा लो !" वह दूसरे कमरे से चार मास्क ले आई। चारों ने मास्क चढ़ा लिये।

थोड़ी देर बाद वायुयानों के भर्राटों से आकाश गूंजने लगा। पोला बन्द खिड़की के शीशों से बाहर का दृश्य देख रही थी। सहसा सड़क

के दूसरे पार सामने वाली इमारत पर एक बम गिरा। इमारत का आधा भाग एक भयंकर धड़ाके के साथ उड़ गया और बचे हुए भाग में आग लग गई। हताहतों के चीत्कार से वायु-मण्डल भर गया। सड़क का आधा भाग ध्वंस इमारत के मलवे से भर गया। इसी समय फिर एक धड़ाका हुआ और पोला के बगल वाले मकान से दूसरा मकान धराशायी हो गया। उसमें से दो स्त्रियाँ तथा तीन चार बच्चे चीत्कार करते हुये सड़क पर निकल कर भागने लगे। इसी समय उनके पास ही एक धड़ाका हुआ और वे सब चिथड़े चिथड़े हो गये। आना ने दोनों हाथों से मारक के शीशे ढक लिए। स्केव, मेरीयूका तथा जेकब श्वास रोके हुये से मूर्तिवत बैठे थे, फिर एक धड़ाका—सड़क का एक और मकान भरभरा पड़ा।

एक एम्बुलेन्स कार (अस्पताल की गाड़ी) घायलों को अस्पताल ले जाने के लिये दौड़ी चली आ रही थी। सहसा उस पर भी एक बम गिरा और पूरी गाड़ी उड़ गई, आदमियों की लाशें उड़ उड़ कर इधर उधर जा गिरीं।

इसी समय दनादन तोपें चलने लगीं यह तोपें हवाई जहाजों को गिराने के लिए थीं। सहसा एक हवाई जहाज आकाश में उलट गया और उसमें से एक ज्वाला उत्पन्न हुई। जहाज जलता हुआ एक मकान की छत पर गिरा और उसका कुछ भाग नष्ट करता हुआ लुढ़क कर नीचे आ गिरा। उसकी आग से वह मकान भी जलने लगा। फिर एक धड़ाका हुआ और थोड़ी दूर पर एक मकान उड़ गया। अब तो धड़ाकों से आकाश गूंजने लगा। उधर आकाश से बम गिर गिर कर सर्वनाश कर रहे थे, इधर तोपें चल रही थीं, इन धड़ाकों में मनुष्यों के चीत्कारों का क्षीण स्वर सुनाई दे रहा था। मकानों से निकल निकल कर आदमी स्त्री बच्चे सड़कों पर भाग रहे थे। जिनके मारक नहीं लगी थी वे थोड़ी दूर भाग कर गैस के प्रभाव से बेहोश

होकर गिर जाते थे। माताएं बच्चों को गोद में उठाकर भागती थीं परन्तु थोड़ी ही दूर पर लड़खड़ाकर गिर जाती थीं। इसी समय अस्पताल की दो गाड़ियाँ आ गईं। उनके रुकते ही आदमी उन पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु गाड़ी पर बैठे हुए दो सैनिकों ने उन्हें संगीनों के बल पर रोका। स्ट्रेचर निकाले गये और जल्दी जल्दी कुछ आहत उनमें डाले गये। इतने रोके जाने पर भी कुछ स्त्रियों ने अपने बच्चों को उनमें डाल ही दिया। गाड़ियाँ चली गईं। पोला खिड़की पर से हट आई और बोली—"ओफ! क्या प्रलय इससे अधिक भयानक हो सकती है?"

* * *

दिन ढल रहा था। हवाई आक्रमण समाप्त हो गया था। सड़कों पर ध्वंस मकानों के मलवे का ढेर था। कुछ मकान अब भी जल रहे थे। सड़क पर यत्र तत्र लाशें बिखरी हुई थीं। घायल सब अस्पताल पहुँचा दिये गये थे। इसी समय सहसा पड़ापड़ पड़ापड़ मशीन गनों की फायरिङ्ग सुनाई पड़ी। पोला ने दौड़कर खिड़की खोली और बाहर गर्दन निकाल कर देखा। डेढ़ फर्लाङ्ग की दूरी पर चार 'आरमर्ड कार' बराबर बराबर चली आ रही थीं और उनके पीछे जर्मनी की सेना आरही थी। पोला बोली—"जर्मन आ गये!"

स्केव बोला—"बन्दूकें उठाओ!"

मेरीयूका बोली—"स्केब! क्या बन्दूकें चलाओगे? यह तो आत्म-हत्या होगी।"

"तो क्या तुम चाहती हो कि हम लोग जर्मनों के गुलाम बन कर रहें! कभी नहीं! स्केव गुलाम बन कर रहने की अपेक्षा लड़कर मर जाना अच्छा समझता है।" यह कहते हुए स्केव ने गेसमार्क-उतार डाली। अन्य तीनों ने भी अपनी अपनी मास्क उतार लीं। मेरीयूका बोली—"स्केव! बच्चों की तरफ देखो।" "हाँ देख रहा हूं। मैं अपने

बच्चों को जर्मनों का गुलाम नहीं बनने दूंगा। जेकब बन्दूकें लाओ।" जेकब दूसरे कमरे में गया और तीन बन्दूकें ले आया। इसी समय बाहर सड़क पर पोलों की सेना की एक टुकड़ी जर्मनों की तरफ आती हुई दिखाई पड़ी। स्केव के मकान के सामने, थोड़ी दूर पर, रुक गई। सैनिकों ने चार मशीनगनें कन्धों से उतार कर सड़क पर जमाई और पड़ापड़ फायर करने लगे। शेष अन्य सैनिक बन्दूकें चलाने लगे। परन्तु आरमर्ड कारें लोहे के दानवों की तरह आगे बढ़ती चली आरही थीं। इधर पोल सैनिक हताहत होकर गिर रहे थे। जब थोड़े आदमी रह गये तो वे भागे। परन्तु एक सैनिक बराबर डटा हुआ मशीनगन चलाता रहा। अन्त में उसके भी गोली लगी और वह अपनी मशीनगन के पास ही लुढ़क गया।

पोला, जेकब तथा स्केब तीनों खिड़कियों पर बन्दूकें ताने खड़े थे। स्केव गठिया के मारे एक लकड़ी के सहारे खड़ा था। कुछ देर में "आरमर्ड कारें" लाशों को रौंदती हुई निकल गई। जब जर्मन सैनिक खिड़कियों के सामने आये तो तीन फायर एक साथ हुए। तीन जर्मन सैनिक चक्कर खाकर जा गिरे। फिर तीन फायर—इस बार दो गिरे। जर्मन सैनिकों ने इन्हें बन्दूक चलाते देख लिया। पन्द्रह बीस सैनिक दौड़ पड़े। मकान का द्वार बन्द था परन्तु उन्होंने बन्दूकों के कुन्दों से द्वार तोड़ डाला और भीतर घुस आये। आते ही एक ने स्केव की छाती में संगीन घुसेड़ दी। एक ने पिस्तौल से जेकब को खत्म कर दिया।

एक सैनिक पोला को देखकर बोला—"ओहो! यह लड़की तो खूबसूरत है!" यह कहकर उसने पोला का हाथ पकड़ा और घसीटने लगा। मेरीयूका छुड़ाने दौड़ी मगर एक ने संगीन से उसे भी समाप्त कर दिया। सैनिक पोला को घसीट कर भीतर दूसरे कमरे में ले जाने लगा। पोला चिल्लाई—"मुझे मार दो, पर मेरी इज्जत न बिगाड़ो।"

सैनिकों ने कहकहा लगाया और जो सैनिक पोला को घसीट रहा था उससे बोले—"देखना कहीं इसके प्रेम में न फँस जाना। इसने भी गोलियाँ चलाई हैं।"

इसी समय एक जर्मन सैनिक "हटो! हटो!" कहता हुआ पीछे से आगे आया। उसने आते ही उस जर्मन को जो पोला को घसीट कर ले जा रहा था पिस्तौल से समाप्त कर दिया। पोला उस सैनिक की सूरत देखकर बोली—"मेशीज! तुम?"

"मेशीज बोला—"हाँ! मैं। मैंने एक मुर्दा जर्मन की वर्दी उतार कर पहनी तब तुम तक पहुँच सका।" जर्मन सैनिक, एक जर्मन को जर्मन पर ही आक्रमण करते देख, हतबुद्ध से खड़े थे। मेशीज की बात सुनकर सब चिल्ला उठे—"यह तो पोल है!" फिर क्या था एक-दम चार पिस्तौलें छूटीं और पोला तथा मेशीज दोनों एक दूसरे से लिपटे ही गिर कर समाप्त हो गये।

बलवान के सामने निर्बल की यही विजय थी।

कार्य कुशलता

पुलिस सुपरिटेन्डेएट मिस्टर पी० सी० लडविग जब से आये हैं तब से पुलिस विभाग में प्राण से आ गये हैं। मिस्टर लडविग उन अफसरों में नहीं हैं जो केवल आवश्यक कागजात पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा जाते हैं। शहर में जुआरखाने का काफी जोर था। इन जुआरखाने से पुलिस को काफी आमदनी थी। किसी जुआर-खाने से सौ रुपया मासिक, किसी से दो सौ रुपये मासिक—इस प्रकार जुआरखाने की आमदनी के अनुसार ही पुलीस को भी हिस्सा मिला करता था। कभी कभी इन जुआरखानों पर पुलीस द्वारा छापा भी मारा जाता था; परन्तु यह सब केवल दिखाने के लिए किया जाता था। छापा मारने के पहले चुपके से सूचना दी जाती थी कि दौड़ आ रही है, होशियार हो जाओ, इसके पश्चात् जब वहां पुलीस जाती थी तो मैदान साफ मिलता था। मि० लडविग के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह लण्डन के 'स्काटलैंड याड' के आदमी हैं। 'स्काटलैण्ड याड'

लण्डन की कोतवाली का नाम है और इस कोतवाली में काम करने वाले संसार भर की पुलिस से अधिक प्रवीण तथा ईमानदार समझे जाते हैं। मि० लडविग की प्रवीणता भी प्रसिद्ध है। वह जहाँ जहाँ रहे वहाँ वहाँ अपराधों में बहुत कमी हो गई और वहाँ की पुलीस भी यथेष्ट ईमानदार तथा सतर्क रही! मि० लडविग हिन्दुस्तानी भाषा इतनी शुद्ध तथा साफ बोलते हैं कि यह पता ही नहीं लगता कि कोई अँग्रेज बोल रहा है।

कोतवाल खानबहादुर अलताफ हुसैन अपने कमरे में विराजमान थे। उनके सम्मुख कोतवाली के इन्चार्ज कुलदीपनारायण, तथा नगर के अन्य थानों के दो तीन इन्चार्ज बैठे हुए थे। कोतवाल साहब कह रहे थे—"अब जरा बहुत हाथ पैर बचाकर काम करना चाहिए। मि० लडविग बड़े होशियार और मुस्तैद आदमी हैं।"

कोतवाली इन्चार्ज कुलदीपनारायण बोले—"चाहे जितने होशियार और मुस्तैद आदमी हों लेकिन हम लोगों से पेश पाना जरा टेढ़ी खीर है!"

"मेरे ख्याल से तो अब कुछ दिनों के लिए जुआरखाने बन्द कर देने चाहियें।" कोतवाल साहब ने कहा।

"क्यों?' कुलदीपनारायण ने पूछा।

"भई लडविग साहब से खौफ मालूम होता है।"

"हुजूर का इकबाल बलन्द है तो सब काम चौकस रहेगा। आखिर बिला हमारी मदद के तो कप्तान साहब कुछ कर ही नहीं सकेंगे।"

"हाँ यह तो दुरुस्त है लेकिन तब भी एहितयात लाजिम है।"

"खैर एहतियात तो की ही जायगी।" एक थाने के इंचार्ज साहब बोले।

"कप्तान साहब को जुआरखाने की बाबत इत्तला तो मिल ही जायगी। जब से वह आये हैं तब से मकामी (स्थानीय) अखबारों ने

शोर मचाना शुरू कर दिया है—यह सब तो उन तक पहुँच ही जायगा।" कोतवाल साहब बोले।

"सुना उर्दू बहुत अच्छी जानते हैं।"

"उर्दू-हिन्दी दोनों जानते हैं। यह भी सुना है कि उर्दू-हिन्दी के अखबार रोजाना पढ़ते हैं।"

कोतवाल साहब बोले—"हाँ बड़े काबिल आदमी हैं। स्काटलैंड यार्ड के आदमी हैं।';

"खैर, चाहे जहाँ के आदमी हों—हम लोगों से पेश पाना आसान नहीं है। वैसे एहतियाद भी रक्खी जायगी।"

(२)

मि० लडविग कोतवाल साहब से वार्तालाप कर रहे थे ! वार्तालाप हिन्दुस्तानी भाषा में हो रहा था। मि० लडविग कह रहे थे—"अखबारों में जुआरखानों की बहुत शिकायत निकल रही है।"

"हुजूर इन अखबारों की तो यह आदत है कि जहाँ कोई नया अफसर आया—बस शोर मचाने लगते हैं।"

"तो क्या इनका लिखना एकदम गलत है?"

"यह तो मैं नहीं कह सकता। जुआरखाने है जरूर; लेकिन उनकी तादाद बहुत कम है!"

"उनका इन्तजाम क्यों नहीं किया जाता?"

"उनका अपना इन्तजाम इतना बहतर है कि हम लोगों का दाँव नहीं लगता। हम लोग जब जब दौड़ लेकर गये तब तब नाकामी (असफलता) ही हुई।"

"इससे तो जाहिर होता है कि आपका ही कोई आदमी उनसे मिला है जो उन्हें पहले से ही होशियार कर देता है।"

"शायद ऐसी बात हो।"

"आपको उस आदमी का पता लगाना चाहिये।'

"कोशिश बहुत की मगर पता नहीं लगता।"

"कोशिश की मगर पता नहीं लगता! यह बात तो कुछ समझ में नहीं आती। कोशिश करने से सबकुछ हो सकता है।"

"अभी कोशिश जारी है।"

"जारी रहनी ही चाहिए। हम चाहते हैं कि एक भी जुआरखाना न रहने पावे।" जुआरखानों का होना पुलीस के लिए शर्म की बात है।"

"बेशक हुजूर। इन्शा अल्लाह! हुजूर की मदद से एक भी जुआर-खाना न रहने पावेगा।"

थोड़ी देर बाद कोतवाल साहब चले गये। उनके जाने के बाद मि० लडविग ने अपने एक आदमी को बुलाया। इस आदमी का नाम हसन अली था। यह मि० लडविग का अपना निजी प्राइवेट नौकर था जो हमेशा उनके साथ रहता था। यह व्यक्ति बड़ा ईमानदार और विश्वास-पात्र था।

मि० लडविग ने उससे एकान्त में कहा—"हसन अली! शहर के जुआरखानों का पता लगाना है।"

"बहुत अच्छा हुजूर, पता लग जायगा।"

"हमें ऐसा मालूम होता है कि पुलीस के कुछ आदमी जुआरखानों से मिले हैं, इस वजह से उनकी गिरफ्तारी नहीं होने पाती।"

"उन आदमियों का भी पता लग जायगा।"

"क्या करोगे?"

"मैं भी जुआरी बन कर जुआरखानों में जाया करूँगा।"

"ठीक।"

"जुआ भी खेलना पड़ेगा।

"तो खेलना! मि० लडविग ने मुस्कुराकर कहा।"

"उसके लिए रुपये चाहिएँ।"

"कितने?"

"फिलहाल सौ-पचास रुपयों की जरूरत पड़ेगी।"

"वह हमसे ले लेना।"

"तो बस कल से मैं जुआरी बनूँगा।"

"हमसे बहुत कम मिलना और जब मिलना तो रात में।"

"ठीक है।"

"पुलीस वालों को पता न लगे कि तुम हमारे आदमी हो।"

"उनको इसकी हवा भी न मिलेगी। मकान मैंने......मुहल्ले में ले लिया है। बिसातखाने की गाड़ी लेकर शहर में घूमता हूँ।'

'बहुत ठीक।"

"जुआरखानों का खातमा करना है!"

"बहुत जल्द हो जावेगा।"

मि० लडविग ने उसी समय हसनअली को सौ रुपये दे दिये।

(३)

जुआरखाने की गिरफ्तारी का काम आरम्भ हो गया। हसनअली जिस जुआरखाने में जाने लगता कुछ दिनों बाद उसी जुआरखाने की गिरफ्तारी हो जाती थी और उसके साथही साथ किसी पुलीसवाले की भी शामत आ जाती थी। इस प्रकार दो तीन जुआरखानों की गिरफ्तारी होने के बाद बहुत से जुआरखाने तो स्वयं ही बन्द हो गये। परन्तु कुछ ऐसे भी थे जो अपने को पुलिस की छत्रछाया में समझकर अपना काम जारी किये हुए थे। इनमें सब से कट्टर एक गुरू का जुआरखाना था। यह गुरू नगर के गुण्डों का सरदार था। यह अलानिया कहता था कि "हमारा जुआ पकड़ें तब समझें कि हाँ कुछ हैं।"

एक दिन इस जुआरखाने पर भी छापा मारने की योजना बन गई। दौड़ जाने के आध घण्टा पूर्व एक चीफ कांस्टेबिल सादे कपड़ों में जुआरखाने की ओर लपकता चला जा रहा था। जैसे ही यह व्यक्ति

जुआरखाने के निकट पहुँचा, वैसे ही हसनअली, जो जुआरखाने की ओर जा रहा था उससे बोला—"अरे चीफ साहब जरा सुनना।"

"क्या ?" चीफ साहब ने उसे घूर कर पूछा। "इस गली में एक शख्स चोरी का माल एक के हाथ बेच रहा है—अगर आप चले चलें तो आप का कुछ फायदा हो जाय।"

"कितना माल है ?"

"है कोई डेढ़ दो हजार का। आप पहुँच जांय तो चार सौ का फायदा हो जायगा।"

"लेकिन मैं एक जरूरी काम से जा रहा हूँ।"

"सिर्फ दस मिनिट का काम है। इससे ज्यादा वक्त नहीं लगेगा।"

चीफ साहब कुछ क्षण सोच कर बोले—"अच्छा चलो।" हसन-अली उन्हें एक तंग गली में लेकर घुसा। जैसे ही चीफसाहब गली में पहुँचे वैसे ही चार आदमियों ने उन्हें पकड़ लिया और एक मकान में घसीट ले गये। हसन अली वहाँ से लौटकर जुआरखाने में घुस गया। जुआरखाने में जुआ हो रहा था। हसनअली भी बैठ कर खेलने लगा। पन्द्रह मिनट पश्चात् एक आदमी घबराया हुआ भीतर आया और गुरू से बोला—"गुरू दौड़ आगई पुलीस ने चारों तरफ से मकान घेर लिया है।"

गुरू ने तुरन्त कहा—"चोर दरवाजा खोलो।"

हसनअली तुरन्त उठा और जो आदमी चोर दरवाजा खोलने चला उसके साथ यह कहता हुआ हो लिया—"यार हमें जल्दी से निकाल दो।" यह लो दो रुपये।"

वह आदमी बोला—"अच्छा चलो।"

पीछे अनेक आदमी घबराये हुए आरहे थे। जैसे ही उस व्यक्ति ने चोर द्वार खोला—सब से पहले हसनअली बाहर निकला। बाहर निकलते ही वह बोला—"अरे यहां पुलीस, बन्द करो दरवाजा।"

भीतर से तुरन्त द्वार बन्द हो गया। हसनअली ने बाहर से जंजीर चढ़ा दी और भागा। आगे एक सब इन्स्पेक्टर खड़ा था। हसनअली को भागते देख उसने उसे पकड़ा। हसन अली ने झट से दस रुपये का नोट निकालकर सब इन्स्पेक्टर साहब की ओर बढ़ाया। सब इन्स्पेक्टर ने हसनअलो के एक लप्पड़ मारा और कहा—"साले रिश्वत देता है। चल इधर खड़ा हो।"

हसनअली को दो कान्स्टेबिलों ने पकड़ लिया।

हसनअली बोला—"हुजूर, मुझे छोड़ दीजिए। दस रुपये और ले लीजिए।" सब इन्स्पेक्टर ने उसे डाँट कर चुप कर दिया।

गुरू का जुआ पकड़ा गया। चीफ साहब को, जो गुरू को दौड़ आने की सूचना देने जा रहे थे, लाइन हाजिर कर दिया गया! जिस सब इन्सपेक्टर ने हसनअली को गिरफ्तार किया था उसे तरक्की मिली। सब के साथ हसनअली पर भी जुर्माना हुआ। इतना हो जाने पर भी पुलीस को यह पता न चला कि हसनअली मि० लडविग का आदमी है।

भ्रान्ति

शाम का समय था। इसी समय एक भिखारी जो फटे-पुराने कपड़े पहने था, सड़क पर स्थित एक भवन के कमरे के सामने खड़ा होकर बोला—"मालिक की बढ़ती रहे—कुछ खाने को मिल जाय !" कमरे में चार व्यक्ति बैठे थे। उसमें एक बोला—"तुम लोगों के मारे और नाक भी में दम है। यहाँ अपना ही ठिकाना नहीं—तुम्हें कहां से दें। "दो दिन से तो हम खुद खिचड़ी खाकर गुजारा कर रहे हैं। गेहूँ मिलता ही नहीं।"

दूसरा व्यक्ति बोला—"गेहूँ ही क्यों, कोई भी अनाज नहीं मिलता।"

"न जाने यह दशा कब तक रहेगी।" पहले ने कहा।

"कुछ समझ में नहीं आता कि क्या होने वाला है। यदि यही दशा महीना-बीस दिन रही तो त्राहि-त्राहि मच जायगी।" तीसरा व्यक्ति बोला।

"त्राहि-त्राहि तो अभी मच रही है। यों कहिये कि लोग भूखों मर जांयगे।"

"हाँ साहब—क्या आश्चर्य है। जब कुछ मिलता ही नहीं तब मर जाना कोई ताज्जुब है ?"

भिखारी बोला—"सरकार ! पैसा दो पैसा मिल जाय।"

"यह और भी कठिन समस्या है। पैसे और रेज़गारी के दर्शन नहीं होते। आज एक रुपया तुड़ाने भेजा तीन बार नौकर वापस आया।"

"क्या कहा जाय ! यह समय भी याद रहेगा !"

"अरे भई तुम कहीं नौकरी-चौकरी क्यों नहीं कर लेते। अभी जवान और हट्टे-कट्टे तो हो।"

'नौकरी मिलती नहीं हुजूर !" भिखारी ने कहा।

यह बात तो कुछ समझ में नहीं आती। नौकरी तो मिल सकती है। आज कल नौकरी की कमी नहीं।"

"नहीं मिलती सरकार सच कहता हूँ।"

"तो फौज में भर्ती हो जाओ। फौज में तो बडी जल्दी ले लिये जाओगे। तुम्हारे कोई है ?"

"फौज में तो मैं चला जाता; पर एक लड़की है सरकार, उसको किसके भरोसे छोड़ जाऊं।"

"कोई नाते-रिश्तेदार नहीं है ?"

"दूर पार के हैं ! उनके यहां छोड़ने का चित नहीं चाहता।"

"लड़की की क्या उम्र है ?"

"जवान है सरकार ! उमर तो मैं ठीक बता नहीं सकता, पर बीस बरस की होगी।'

"तोबा ! तब भी तुम भीख मांगते हो। नौकरी करके उसका

ब्याह-व्याह करदो। भीख माँगकर तो तुम उसका ब्याह कर चुके। कौन जाति हो?"

"मैं तो ब्राह्मण हूँ सरकार!"

"कौन ब्राह्मण?"

"कनौजिया सरकार।"

"ठीक है। ब्राह्मणों को भीख माँगना अधिक सहल पड़ता है।"

यह कह कर उसने एक इकन्नी जेब से निकाल कर भिखारी की ओर फेंकी और कहा—"कोशिश करके कहीं नौकरी-वौकरी करलो—आज कल मिलों में अच्छी तनख्वाहें मिल रही हैं। इस तरह तो लड़की व्याह होना भी कठिन है। भिखारी की लड़की से कौन ब्याह करेगा।"

"हुंजूर—आप ही कहीं रखादें—जन्म भर गुन मानूंगा।"

"औरसुनो! लाद दे लदा दे लादन वाला साथ दे।"

"तो हुंजूर—मैं तो कोशिश करके हार गया।"

कुछ क्षण सोच कर वह व्यक्ति बोला—"अच्छा कल हमारे पास आना। हमारा नाम शङ्करलाल है—मकान का पता समझ लो।"

यह कर उसने मकान का पता बता दिया।

भिखारी बोला—"किस समय आऊँ?"

"सुबह आओ—नौ दस बजे तक!"

"बहुत अच्छा! भगवान आप को सुखी रक्खे।"

इतना कह कर भिखारी आगे बढ़ गया।

(२)

उसके चले जाने पर वह व्यक्ति बोला—"यदि इसे सचमुच नौकरी करनी होगी तो आयगा अन्यथा न आयगा।"

"आप भी क्या बातें करते हैं। यह भला नौकरी करेगा। जिसे भीख माँगने का चस्का पड़ गया वह कभी नौकरी नहीं कर सकता।"

"खैर देखा जायगा। मैंने तो कन्या का वृत्तान्त जान कर कहा कि

एक गरीब का उपकार हो जाय !"

"कौन जाने कन्या है भी या नहीं।"

"न होगी तो न सही, मेरा क्या ले जायगा।"

"इकन्नी ले गया, जिसकी उसे आवश्यकता थी।"

"आपने भी अच्छी कही। इकन्नी क्या ले गया कोई बड़ी सम्पत्ति ले गया।"

कुछ देर में वह व्यक्ति उठ कर चला गया। अब केवल तीन व्यक्ति रह गये। उनमें से एक बोला—

"यह शङ्करलाल बड़ा दुराचारी है। जवान लड़की का नाम सुन कर कैसी जल्दी इकन्नी निकाल कर दे दी।"

"हाँ जी ! इसने लड़की को घतियाया है।"

"बड़ा पतित है। विश्वनाथ से कहो, यही उसे यहाँ लाये थे, तब से आने लगा।"

विश्वनाथ बोला—"क्या बताऊँ, उस समय मुझे इसकी हरकतों का पता नहीं था।"

जब से मुझे मालूम हुआ तब से मैंने मेल-जोल कम कर दिया है।"

"भई हम ऐसे आदमी का अपने यहाँ आना-जाना पसंद नहीं करते। लेकिन मना कैसे करें-यह प्रश्न है। सभ्यता और आँखों का शील मुंह बन्द किये हुए है।"

विश्वनाथ बोला—"देखिये मैं किसी मौके से कह दूंगा। मैं उसे लाया हूँ। तो मैं ही उसका आना भी बन्द करूँगा।"

"हाँ उस्ताद, करना तो तुम्हें ही चाहिए।"

"मैं ही करूँगा। और शायद जल्दी ही।"

"क्या करोगे ? क्या कहोगे ?"

"हाँ कुछ तो करना ही पड़ेगा। अच्छा मैं अग चलूँगा।"

"अजी बैठो भी।"

"एक आवश्यक कार्य याद आ गया।"

यह कह कर विश्वनाथ चल दिया वह लपकता हुआ चला! कुछ दूर चलने पर उसने देखा कि वही भिखारी मन्दगति से इधर उधर देखता चला जा रहा है। विश्वनाथ लपक कर उसके बराबर पहुँच गया। बराबर पहुँच कर उसने भिखारी से कहा—

"कल विश्वनाथबाबू के यहाँ जाओगे न?"

भिखारी विश्वनाथ को ध्यान-पूर्वक देख कर बोला—"ओ हो बाबू जी हैं—हाँ जाऊँगा।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम सीताराम है सरकार-सीताराम दुबे।"

"कहाँ रहते हो?"

सीताराम ने पता बता दिया। पता बता कर बोला—"एक बाबू ने दया कर के एक कोठरी और दालान दे दिया है—दो रुपये महीने पर उसी में रहता हूँ।"

"ठीक है!" कह कर विश्वनाथ ने अपनी चाल तेज की।

सीताराम बोला—"आप भी सरकार ध्यान रक्खें—परमात्मा आपके बच्चे सुखी रक्खे।"

"हाँ! हाँ!" कहते हुए बिश्वनाथ आगे बढ़ गया!

(३)

उपर्युक्त घटना को एक मास व्यतीत हो गया हैं। आज कल सीताराम एक मिल में काम करता है। सबेरे ही घर से निकल जाता है और शाम को घर लौटता है। उसकी पुत्री सरस्वती दिन भर घर में अकेली रहती है। सरस्वती देखने में सुन्दर है। विश्वनाथ ने सीताराम से घनिष्टता उत्पन्न करली थी। अतः वह सीताराम की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में उसके घर आता जाता रहता है। शंकरलाल भी

आता जाता है। एक दिन दोपहर को शंकरलाल जब सीताराम के घर पहुँचा तो उसने देखा कि सरस्वती बैठी रो रही है। शङ्करलाल ने पूछा-"काहे बिटिया काहे रोती हो?"

सरस्वती ने कोई उत्तर न दिया। शङ्करलाल ने जब कई बार आग्रह करके पूछा तो वह बोली—"आज बिसनाथ बाबू अभी आये थे।"

शंकरलाल बोला—"हां-तो फिर?"

सरस्वती उत्तेजित होकर बोली—"वह बड़े खराब आदमी हैं, वह हमारे यहाँ क्यों आते हैं? आज उन्होंने ऐसी बात कही कि मैं सरम के मारे मर गई। मैंने कोठरी में घुसकर भीतर से किवाड़ें बन्द कर लिये।"

शंकरलाल बिस्मित होकर बोला—"विश्वनाथ बाबू! वह तो बड़ा अच्छा आदमी है।"

"अच्छा है! वह बड़ा खराब आदमी है। मैं दादा (पिता) से कह कर उसका आना-जाना बन्द करवा दूंगी।"

शंकरलाल बोला—"अभी दो-चार दिन मत कहना। पहले मुझे उससे बात कर लेने दो—अच्छा बिटिया।"

सरस्वती बोली—"अच्छी बात है। पर अब वह यहाँ आवे नहीं!"

"नही आयेगा।"

उसी दिन शंकरलाल विश्वनाथ से मिला। शंकरलाल ने पूछा–"क्यों विश्वनाथ यह क्या हरकत थी?"

विश्वनाथ ने पूछा—"कौन सी हरकत?"

शंकरलाल ने बताया। विश्वनाथ सब सुन कर बोला—"सरस्वती झूठ बोलती है।"

"वह झूठ नहीं बोल सकती। उसके झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है, तुम्हारे झूठ बोलने का कारण है।"

विश्वनाथ चिढ़ कर बोला—"तुम बेचारे मेरे सामने क्या मुंह

लेकर बात कर रहे हो। दुनिया भर के दुराचारी व्यभिचारी। मेरे विरुद्ध एक बात भी बता सकते हो ?"

"क्यों नहीं, क्योंकि तुम्हारे जैसे लोग बगला भगत होते हैं और ठट्टी की ओट में शिकार खेलते हैं और मैं जो कुछ करता हूँ खुले आम करता हूँ। मैं जो कुछ करता हूँ उसे संसार देखता है—तुम जो करते हो उसे भगवान के अतिरिक्त कोई नहीं देख सकता। खैर! मैं तुम्हें सचेत करता हूँ कि अब वहां कभी मत जाना।"

"जिससे तुम्हारे लिए रास्ता साफ हो जाय।"

"नहीं विश्वनाथ, तुम्हारा खयाल गलत है। मैं सरस्वती को अपनी बेटी के बराबर समझता हूँ।"

"बेटी! हा! हा! तुम से ऐसी आशा तो नहीं है। तुम भला किसी जवान और सुन्दर पर स्त्री को बेटी के रूप में देख सकते हो—असम्भव!"

"हाँ देख सकता हूँ क्योंकि मेरी वासनाएँ बहुत कुछ तृप्त हो चुकी हैं। मैं केवल इच्छा करते ही किसी को भी पवित्र दृष्टि से देख सकता हूँ। परन्तु तुम नहीं देख सकते, क्योंकि तुम्हारा हृदय अतृप्त वासनाओं का भाण्डार है। इच्छित वस्तु सामने होने पर तुम उन वासनाओं को दबा नहीं सकते। तुम तभी तक साधु रह सकते हो जब तक तुम्हारे सामने कोई प्रलोभन न हो और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए सुअवसर न प्राप्त हो—समझे? तुम में जो कुछ साधुता है वह कृत्रिम है, दुर्बल है। मुझ में जो कुछ थोड़ी सी भी भलमनसाहत शेष रह गई है वह वास्तविक है—ठोस है। समझे?"

"अच्छा अच्छा बहुत बातें न बनाओं, मैं तुम्हें खूब जानता हूँ।"

"जानते हो तो ठीक है। परन्तु अब कभी वहाँ मत जाना वरना पछताओगे।" वह सीताराम की बेटी नहीं, मेरी बेटी है।"

"तुम्हारे जैसे लफँगे...."

विश्वनाथ इतना ही कह पाया था कि शंकरलाल ने उसके मुंह पर एक घूंसा मारा। विश्वनाथ लड़खड़ा कर दीवार के सहारे टिक गया। उसके नाक तथा मुंह से रक्त बहने लगा।

शंकरलाल ने पूछा—"जाओगे ?"

विश्वनाथ भयभीत होकर बोला—"नहीं जाऊँगा।"

"प्रतीज्ञा करो।"

"प्रतीज्ञा करता हूँ।" विश्वनाथ ने हाथ से रक्त पोंछते हुए कहा।

शङ्करलाल चल दिया।

मित्र मण्डली में शंकरलाल अब भी बड़ा दुष्चरित्र तथा विश्वनाथ बड़ा सच्चरित्र प्रसिद्ध है ; क्योंकि शङ्करलाल ने उपर्युक्त घटना का जिक्र किसी से नहीं किया।

प्रेत

प्रताप अपनी माँ का एकलौता पुत्र था। रुक्मिणी २२ वर्ष की वयस में विधवा होगई थी तब से उसका एकमात्र सहारा प्रताप ही था। विधवा होने के समय प्रताप की वयस १ वर्ष की थी। इस समय उसकी अवस्था १५ वर्ष के लगभग है। रुक्मिणी गरीब है। उसने बड़े धैर्य, संयम तथा कष्ट सहन करके प्रताप को पाला। तीन चार जगह रोटी बनाने की नौकरी करके वह अपना तथा अपने पुत्र का भरण-पोषण करती थी। इधर चौदह वर्ष का हो जाने पर प्रतात को भी एक कारखाने में नौकरी मिल गई। एक वर्ष तक, जब तक वह काम सीखता रहा, उसे दस रुपये मासिक मिलते थे, परन्तु एक साल बाद उसका वेतन पन्द्रह रुपये मासिक हो गया।

एक दिन प्रताप ने अपनी माता से कहा—"अम्मा अब तुम रोटी करना छोड़ दो।"

"काहे बेटा ?" रुक्मिणी ने पूछा।

"जब मैं कमाता हूँ तब तुम्हें कमाने की क्या जरूरत है ?"

"जरूरत क्यों नहीं है ? और अब तो मैं दो ही जगह की रोटी करती हूँ—दस रुपये मिल जाते हैं। खाली तेरी कमाई से तो पूरा भी नहीं पड़ेगा।"

"तुम्हारा रोटी करना मुझे अच्छा नहीं लगता। अगले महीने मेरी तनख्वाह और बढ़ जायगी, दो रुपये बढ़ेंगे।"

"भगवान करे तनख्वाह खूब बढ़े परन्तु बेटा अगर आठ दस रुपये मैं भी कमाती हूँ तो कौन बुरी बात है ? कल को तेरा ब्याह होगा तो बहू के लिए कपड़ा गहना भी तो बनवाना होगा। उसके लिए अभी से तैयारी न करूंगी तो उस समय कहां से आ जायगा ? तेरी तनख्वाह तो खाने-पहनने भर को ही होती है।"

प्रताप सोचने लगा—"अम्माँ ठीक तो कहती हैं। ब्याह होगा तो रुपये की जरूरत पड़ेगी, तब कहाँ से आयंगे ?" यह सोच कर प्रताप मौन हो गया।

रुक्मिणी ने समझ लिया कि उसकी बात प्रताप की समझ में आ गई। अतः वह यह जानकर मन ही मन बड़ी प्रसन्न हुई कि उसका प्रताप बड़ा समझदार है।

यद्यपि रुक्मिणी एक प्रकार से सुखी थी, भोजन-वस्त्र का कोई कष्ट न था, प्रताप का स्वास्थ्य भी अच्छा था और वह स्वयं भी नीरोग थी, परन्तु तब भी उसके चित्त को शान्ति न थी। एक गुप्त चिन्ता के कारण वह बेचैन रहती थी। उसकी चिन्ता का कारण एक ज्योतिषी की भविष्यवाणी थी। उस ज्योतिषी ने प्रताप की कुण्डली देखकर बताया था—"तुम्हारा लड़का बड़ा होनहार है। यदि जीवित रहा तो बड़ी उन्नति करेगा। परन्तु इसका जीवित रहना कठिन दिखाई पड़ता है। पन्द्रहवें साल में इसकी एक अरिष्ट है, यदि उससे बच आया तो फिर अच्छी आयु भोग करेगा।"

प्रताप का पन्द्रहवाँ वर्ष आरम्भ हुए दो मास हो चुके हैं। रुक्मिणी

की चिन्ता का यही कारण है।

उक्त ज्योतिषी की भविष्यवाणी के पश्चात रुक्मिणी ने न जाने कितने ज्योतिषी को प्रताप की कुण्डली दिखाई परन्तु किसी ने अरिष्ट की बात नहीं बताई। जब वह स्वयं कहती कि 'एक पण्डित ने ऐसा बताया है' तो अन्य ज्योतिषी कहते कि—"हाँ अरिष्ट तो है, पर कोई खटके की बात नहीं है लड़का इस अरिष्ट से बच निकलेगा।" यद्यपि ज्योतिषियों के इस कथन से रुक्मिणी का आशा सूत्र कुछ दृढ़ हो गया था, तथापि उसे चिन्ता लगी ही रहती थी। उसने पण्डितों के बताये हुये व्रत-उपवास भी करने आरम्भ कर दिये थे। स्नान करने के पश्चात् वह नित्य एक लोटा जल तपेश्वरी देवी पर चढ़ाती थी और उनसे प्रताप के लिए प्रार्थना करती थी। प्रताप इन सब बातों से अनभिज्ञ था।

(२)

एक दिन रात को जब दोनों माँ-बेटा सोने के लिए लेटे तो प्रताप ने प्रश्न किया—"अम्माँ तुमने कभी भूत देखा है?"

प्रताप के मुख से अकस्मात् आज यह नया प्रश्न सुनकर रुक्मिणी के हृदय में मानों बिजली के करेण्ट का धक्का लगा। उसने आज तक प्रताप से भूत-प्रेत के सम्बन्ध में कोई बात नहीं की थी। बचपन में भी उसने प्रताप को कभी भूत-प्रेत का नाम लेकर नहीं डराया था। एक तो उसका विचार था कि ऐसा करने से बच्चे जन्मभर के लिए भीरु हो जाते हैं, दूसरे उसे ज्योतिषी का कथन भी ऐसा करने से रोकता था। ज्योतिषी की भविष्यवाणी के कारण प्रताप से भूत-प्रेत की बात करने में उसे कुछ आशंका भी मालूम होती थी। यही कारण था कि वह प्रताप के मुंह से उपर्युक्त प्रश्न सुनकर इतनी विचलित हो उठी।

माता को मौन देखकर प्रताप बोला—"अम्माँ तुम कहा करती थीं कि भूत-प्रेत कुछ नहीं होता—यह केवल बच्चों को डराने के

लिए कह दिया जाता है।"

"हाँ सो तो ठीक बात है।" रुक्मिणी बोली। "लेकिन अम्माँ हमारे साथ एक कुर्मी काम करता है वह हमें भूत-प्रेतों की बातें खूब सुनाया करता है। वह तो कहता है कि उसने भूत देखे हैं।"

"झूठ बोलता है।"

"झूठ नहीं अम्माँ ! वह तो कसम खाता था।"

"ऐसों की कसम का क्या इतबार।"

"क्यों, एतबार क्यों नहीं।"

"बाजे आदमी अपने को बड़ा जताने के लिए झूठी बातें कह दिया करते हैं।"

"वह ऐसा नहीं है।"

"तू क्या जाने कि नहीं है।"

"वाह ! जानता क्यों नहीं ? वह झूठ नहीं बोलता।"

"तू तो पागल है ! उसने कहा और तूने मान लिया।"

"वह कहता था कि भूत से डरना नहीं चाहिए। जो भूत से डरता नहीं है उसका भूत कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। हां जो डरता है उसे वह जरूर तंग करता है।"

"खैर होगा, तुझे ऐसी बातें नहीं सोचनी चाहिएँ।"

"मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भूत देखूं।"

"तुझे डर नहीं लगेगा ?"

"डर ! अभी तो ऐसा मालूम होता है कि डर नहीं लगेगा। अच्छा अम्माँ तुम देखो तो तुम्हें डर लगे ?"

"मैं देखूं ही काहे को ?"

"जो दिखाई पड़ जाय तो—"

"मैं कभी नहीं डरूंगी।"

"हाँ डरना नहीं चाहिए। मैं भी नहीं डरूंगा।"

"वह कुर्मी कहता था कि उसके गांव में एक आदमी है वह भूतों को बुला लेता है।"

"उसका सिर बुला लेता है। तू ऐसी बातें न सुना कर।"

"मुझे ये बातें बड़ी अच्छी लगती हैं।"

"अभी अच्छी लगती हैं; फिर डरने लगेगा।"

"न अम्माँ मैं डरूंगा नहीं। अब की वह कुर्मी जब छुट्टी लेकर गाँव जायगा तो मैं भी उनके साथ जाऊंगा।"

"क्यों जायगा?"

"वहाँ जो आदमी भूत बुलाता है। उससे भूत बुलवा कर देखूंगा।"

"पागलपने की बात तो कर नहीं मैं भला तुझे वहाँ जाने दूंगी!"

"क्यों, जाने क्यों न दोगी?"

"कोई बात भी हो। खामखाह तुझे कुछ अंट-संट दिखाकर डरा देंगे।"

"सो मैं ऐसा डरने वाला नहीं हूँ। जब तुम कहती हो कि तुम भूत देख कर नहीं डरोगी तो मैं कैसे डर जाऊंगा—मैं भी नहीं डरूंगा।"

"मेरी बात और है, तू अभी बच्चा है।"

"बच्चा हूँ तो क्या हुआ—मुझे डर नहीं लगता।"

"डर नहीं लगता यह तो अच्छी बात है, पर भूत-प्रेत का स्वाँग देख कर डर जाय तो—?"

"नहीं डरूंगा।"

"नहीं डरेगा तो न सही—अच्छा अब सो जा, मुझे भी नींद आ रही है।"

(३)

उपर्युक्त वृत्तान्त के दो मास पश्चात् प्रताप बीमार पड़ा। पहले तो रोग का निदान सामान्य ज्वर किया गया परन्तु एक सप्ताह व्यतीत होने पर चिकित्सक ने 'टायफायड' (मोती-झरा) निश्चित किया।

प्रताप की माता भविष्यवाणी के कारण धड़कते हुए हृदय तथा विच-लित मस्तिष्क से प्रताप की सेवा सुश्रूषा करने लगी। चिकित्सक ने २१ दिन की अवधि नियुक्त की थी, परन्तु जब इक्कीस दिन व्यतीत हो जाने पर भी ज्वर का वेग नहीं घटा तब चिकित्सक ने उन्तीसवें दिन की आशा दिलाई। परन्तु प्रताप की हालत प्रति दिन चिन्ताजनक ही होती गई।

एक दिन प्रातःकाल प्रताप ने कहा—"अम्मां!"

"क्या है बेटा, मेरा लाल।" रुक्मिणी ने प्रताप के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

प्रताप मुस्कराया। उसके दौर्बल्य दीनताहत मुख पर मुस्कान देख कर रुक्मिणी की क्षीण आशा किरण कुछ क्षण के लिए उद्दीप्त हो उठी।

रुक्मिणी भी मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई बोली—"क्या है बेटा ?"

"आज रात मैंने सपने में पिता जी को देखा है।"

रुक्मिणी चौंक पड़ी। उसकी उद्दीप्त आशाकिरण सहसा क्षीणतर हो गई। वह घबराकर बोली—"पिता जी! तू पिता जी को क्या जाने ?"

"मैं तो नहीं जानता, पर तुमने बताया जो था।"

"तूने उन्हें पहचाना कैसे ?"

"तुमने पहचनवाया। एक आदमी आया। वह मुझ से बोला—'हमारे साथ चलोगे ? इतने में जानो तुम भी वहाँ आगईं और तुमने कहा कि प्रताप, तेरे पिता जी हैं।' बस फिर याद नहीं कि क्या हुआ।

रुक्मिणी का हृदय डूबने लगा। चीख मार कर रो पड़ने की प्रवृत्ति हुई परन्तु उसने बड़े धैर्य के साथ अपने को सँभाला और किञ्चित गद्‌गद् कन्ठ से बोली–"ठीक है। ला तुझे दवा दे दूँ—समय हो गया।

यह कहकर रुक्मिणी औषध देने का आयोजन करने लगी।

प्रताप बोला—"अम्माँ, अगर पिता जी तुम्हारे सामने आकर खड़े हो जाँय तो तुम्हें डर लगे ?"

"अपने प्यारों से कहीं डर लगता है। डर तो गैर आदमी से लगता है।"

प्रताप मानों माता की बात पर विचार करता हुआ बोला—"हाँ और क्या—अपने से क्या डर ! और किसी से क्या डर ! डरना नहीं चाहिए। फिर भी आदमी डरते हैं—क्यों डरते हैं ?"

जो ना समझ होते हैं वही डरते है। ले दवा खा ले।'

दवा खाकर प्रताप बोला—"आज तबियत कुछ अच्छी है।' रुक्मिणो की आशा-ज्योति का प्रकाश पुनः कुछ बढ़ा । वह प्रसन्न होकर बोली—"अब भगबान् चाहे तू जल्दी ही अच्छा हो जायगा।"

परन्तु उसी रात को प्रताप के जीवात्मा ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। रुक्मिणी के शोक का पारावार न था। उसका रुदन सुन कर लोगों का हृदय पानी होता था। मुहल्ले के चार आदमी आये और उसे समझा-बुझाकर चले गये।

दालान में अण्डी के तेल का दीपक टिमटिमा रहा था। उसके क्षीण प्रकाश में रुक्मिणी प्रताप के शव के पास बैठी हुई थी। शव का सम्पूर्ण शरीर एक चादर से ढका था—केवल मुख खुला हुआ था। रुक्मिणी शव के सिर पर हाथ रखे बैठी थी। चिल्लाते चिल्लाते उसका कंठ स्वर भंग हो गया था। वह कभी चिल्लाकर रोने लगती और कभी हाय हाय करने लगती थी। सहसा दालान के एक कोने में जहाँ दीपक का न्यूनतम प्रकाश था, हल्के नीले रंग का एक ज्योति मण्डल प्रस्फुटित हुआ। पहले उसकी ज्योति बहुत क्षीण थी, परन्तु क्रमशः वह बढ़ने लगी और साथ ही साथ मण्डल का आकार भी बढ़ने लगा।

रुक्मिणी रोना-चिल्लाना भूल कर मन्त्रमुग्ध की भांति इस मण्डल को देखने लगी। मण्डल कुछ क्षण तक बढ़ने के पश्चात मनुष्य के रूप में बदल गया। अब रुक्मिणी ने स्पष्ट देखा कि प्रताप खड़ा है। रुक्मिणी के रोंए खड़े हो गए। सहसा प्रताप बोला—"अम्माँ तुम क्यों इतना रो रही हो ? मैं कहीं गया थोड़े ही हूँ, तुम्हारे पास ही तो हूँ।"

रुक्मिणी ने अवाक् मुख तथा विस्फारित नेत्रों से यह सब देखा और सुना। उसकी दृष्टि एक बार शव की ओर गई और वहाँ से उठकर प्रताप की अपार्थिव मूर्ति पर पड़ी। उसके मुख से एक चीख निकली और वह बेहोश होकर दीवाल के सहारे लुढ़क गई।

मूर्ति के मुख की मुस्कान विलीन हो गई, उसके स्थान पर निराशा तथा विरक्तता का भाव उदय हुआ। मूर्ति अन्धकार में घुलने लगी और क्रमश: क्षीण होकर लुप्त हो गई।

खोटा बेटा

लोचन अहीर गांव का सब से नालायक युवक था। वयस २३-२४ वर्ष के लगभग, गेहुँआ वर्ण, खूब हृष्ठ-पुष्ट तथा बलिष्ठ।

उसका पिता मोहन उससे तङ्ग आ गया था, क्योंकि लोचन केवल खाना तथा कसरत करना जानता था, अन्य किसी काम में हाथ भी नहीं लगाता था। खेती से उसे सरोकार नहीं था, गाय भैंसों से बेमतलब—यद्यपि जितना दूध होता था उसका अधिकांश वह अकेला ही गटक जाता था। उसके छोटे भाई जानवर चराते थे और वह स्वयं इधर उधर घूमने तथा गप लड़ाने में रहता था अथवा तीतर का पिंजड़ा लेकर जँगल की ओर निकल जाता था और तीतर को दीमक खिलाता फिरा करता था। उसके माता-पिता तो उससे असन्तुष्ट थे ही, गाँव वाले भी उससे नाराज थे, क्योंकि वह गाँव के अन्य युवकों को भी अपने ही जैसा बनाने का प्रयत्न किया करता था।

दोपहर का समय था। लोचन भोजन इत्यादि करके तीतर का पिंजड़ा हाथ में लिए निकला। एक पड़ोसी के द्वार पर जाकर उसने

आवाज दी—"जगेसर ! जगेसर हो !"

जगेसर भी अहीर युवक था। वह भोजन करके उठा ही था कि लोचन का आवाहन सुन कर वह बाहर निकला। लोचन ने उससे कहा- "जङ्गल चलते हो !"

जगेसर ने उत्तर दिया—"नहीं भाई, अभी हमें खेत में जाकर काम करना है।"

"अरे यार खेत का काम तो कोई न कोई कर ही लेगा—आओ हम तुम चलें।"

इसी समय जगेसर का पिता निकल आया। वह बोला—"खेत का काम कौन कर लेगा ? चला वहाँ से बड़ा अफलातून का नाती बन कर ! जैसा खुद निकम्मा है वैसा ही सबको बनाना चाहता है। खबरदार जो अब कभी जगेसर को बुलाने आया। हराम का खा खा के सण्डा हुआ हैं—सरम नहीं आती ? बुड्ढे मां—बाप, छोटे भाई-बहिन तो दिन भर काम में जुटे रहते हैं, यह तीतर चुगाते फिरते हैं। और सुन रे जगेसरा ! तू जो कभी इसके साथ गया तो घर से निकाल दूँगा—यह याद रखना।"

लोचन जगेसर के बाप की फटकार सुन कर चुपचाप चला गया। लोचन में यह एक गुण था कि वह लड़ाई-झगड़ा किसी से नहीं था। करता सब की डाँट-फटकार चुपचाप सुन लेता था। अपने इस स्वभाव के लिये वह बदनाम भी काफी था। लोग कह दिया करते थे कि— "यह हाथी सा बरन देखने ही देखने का है। इतना तगड़ा आदमी और ऐसा कायर ! मामूली कमजोर आदमी से भी दब जाता है। ऐसा कायर आदमी ही नहीं देखा। कोई गुन नहीं, सब औगुन ही औगुन ! मोहन की तकदीर फूट गई जो ऐसा कपूत पैदा हुआ।"

लोचन के कान में जब कभी ये शब्द पड़ जाते, तो वह केवल मुस्करा कर रह जाता था। उसके हमजोली जब कभी उससे कहते—

"यार क्या मामला है कि तुम कमजोर आदमी से भी दब जाते हो ?" तब वह उत्तर देता कि—"दबना ही पड़ता है। कोई बेजा बात तो कहते नहीं। और हमें गुस्सा भी नहीं आता। कमजोर आदमी पर गुस्सा करने में क्या मजा ?"

"तो तुम सहजोर पर ही कब गुस्सा करते हो ?"

"हमें गुस्सा आता ही नहीं क्या करें !"

"तुम्हारा खून ठण्डा है।"

"अब जो समझो !"

"तुम घर का काम-काज क्यों नहीं करते ?"

"जी नहीं चाहता।"

"हाँ जी कैसे चाहे ? आराम से बैठकर खाने को मिले तो काम करने की क्या जरूरत है ?"

लोचन केवल मुस्कारा कर रह जाता था।

(२)

गाँव की तहसील हो रही थी। इस बार गांव के जमींदार भी अपने कारिन्दे के साथ आये हुए थे। उनके आने से गाँव में खलबली मच गई। सब छोटे-बड़े जमींदार साहब के दर्शन करने जाने लगे। मोहन ने लोचन से कहा—"गाँव के जमींदार आये हैं—जाकर मिल आओ।"

"हमसे जमींदार से क्या मतलब ! तुम जाकर मिलो। हमें उनसे कौन खेत लेने हैं !"

"हां तुम तो हराम की चरना जानते हो। तुम से किसी सेमत लब नहीं। जरा मेरी आँखें मिचने दो, फिर आटे-दाल का भाव मालूम पड़ेगा।"

यह कह कर मोहन क्रोध में भरा हुआ जमींदार के डेरे की ओर चला गया।

जमींदार साहब ने मोहन को देखकर पूछा—"कहो मोहन, मजे

में हो ?"

"सब सरकार की किरपा है इस दफा सरकार ने बहुत दिनों में दर्शन दिये ।"

"हाँ ! आना नहीं हुआ । तुम्हारे बाल बच्चे सब अच्छे हैं ?"

"सब सरकार की किरपा है ।"

एक व्यक्ति बोल उठा—"लोचन के मारे मोहन चौधरी दुखी हैं ।"

"क्यों क्या बात है ?" जमींदार ने पूछा । मोहन बोला—"क्या बतावें मालिक ! लोचन नालायक निकल गया । न कुछ काम करता है न काज !"

"अच्छा जरा उसे हमारे पास तो भेजना ।"

"मेरे कहे से तो आयगा नहीं—आप अपना गुड़ैत भेज कर बुलवावें । सायद सरकार के कहने—सुनने से कुछ राह पर आ जाय ।"

जमींदार साहब ने गुड़ैत को हुक्म दिया—"जाओ लोचन को बुला लाओ।"

मोहन बोला—"घर में तो मिलेगा नहीं ।" गुड़ैत बोला—"हम जानते हैं जहां मिलेगा ।" यह कह कर गुड़ैत चला गया ।

आध घन्टे में गुड़ैत लोचन को साथ लेकर आ गया । लोचन के हाथ में तीतर का पिंजड़ा था । मोहन अपने पास बैठे हुए एक व्यक्ति से धीमे स्वर में बोला—"देखा ! पिंजड़ा लेकर आया है । इतना भी सहूर नहीं कि जमींदार के सामने कैसे जाना चाहिए ।"

लोचन जमींदार के सामने आकर खड़ा हो गया । उनसे राम-जुहार कुछ नहीं की ।

जमींदार साहब ने उसे सिर से पैर तक देखकर कहा—"अब तो तुम जवान हो गये ।" लोचन केवल मुस्कराकर रह गया !

"घर का काम काज क्यों नहीं करते ? बाप को दुखी करते हो ।" लोचन ने कुछ उत्तर नहीं दिया । मोहन लोचन को डपट कर बोला–

"क्या भकुआ की तरह खड़ा है, मालिक की बात का जवाब क्यों नहीं देता ?"

जमींदार साहब बोले--"घर का काम-काज किया करो—बाप को दुखी मत किया करो।"

गाँव के एक ठाकुर बोल उठे—"सरकार यह बड़ा नालायक है। गाँव के लड़के इसकी संगत में बिगड़े जा रहे हैं।"

यह सुन कर जमींदार साहब ने आँखें तरेरते हुए कहा—"देखो लोचन ! तुम अपने लच्छन सुधारो नहीं तो हमें मजबूर हो तुम्हें गाँव से निकाल देना पड़ेगा।"

एक वृद्ध सज्जन बोल उठे—"सरकार जब तक आप यहाँ रहें तब तक इसे यहीं हाजिर रहने का हुक्म दे दें।"

जमींदार साहब बोले—"हाँ, यह ठीक है ! सुना लोचन, अब जितने दिन हम यहाँ रहें तुम यहीं हाजिर रहो।"

मोहन बोला—"यह बहुत अच्छा है सरकार ! बस यहीं बना रहे। सुना लोचन ! बस घर रोटी खाने भर को आना बाकी यहीं रात दिन बने रहना। मालिक जो काम बतावें वह करना।" लोचन ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

(३)

तहसील को चार दिन व्यतीत हो चुके थे। डेढ़ हजार रुपये के लगभग आ चुका था। लोचन रात-दिन डेरे में ही उपस्थित रहता था। केवल भोजन करने के लिये घर जाता था।

रात के २ बज चुके थे। डेरे में जमींदार साहब, गुड़ैत तथा जमींदार साहब का नौकर तथा कारिन्दा सब लोग गहरी नींद में सो रहे थे। केवल लोचन जाग रहा था। उसके जागने का कारण यह था कि उसे क्लेश था। आकाशचारी स्वतन्त्र पक्षी को पिंजड़े में बन्द हो जाने से जो दशा होती है वही दशा लोचन की भी थी। वह सोच रहा था

कि कब जमींदार साहब यहाँ से टलें और कब उसे छुटकारा मिले।

सहसा कुछ खटका सुनकर वह चैतन्य हो गया। वह उठ कर बैठ गया। अन्धेरे में नक्षत्राकीर्ण आकाश की पृष्ठ-भूमि पर उसे एक छाया सी दिखाई पड़ी। डेरे के चारों ओर आठ फीट ऊंची दीवार थी। इसी दीवार पर छाया दिखाई दी थी। लोचन बैठा देखता रहा। कुछ क्षण पश्चात दूसरी छाया दिखाई दी, फिर तीसरी! अब लोचन सम्भल कर बैठ गया। उसका हाथ बगल में रक्खी हुई लाठी पर गया। तीनों मूर्तियाँ एक एक करके डेरे के अन्दर उतर आईं और दीवार पर तीन व्यक्ति और आ गये। वे भी उतरने लगे। इसी समय लोचन लाठी लेकर चुपके से उठा। वह धीरे धीरे दबकता हुआ उन आदमियों की ओर गया। उन आदमियों की पीठ लोचन की ओर थी। सहसा उनके निकट पहुँच कर लोचन ने ललकार कर कहा—"बस खबरदार।"

जैसे ही वे लोग लोचन की ओर घूमे। वैसे ही लोचन ने लाठी का वार किया। तड़ाक से आवाज आई और एक आदमी चिल्लाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। दूसरे ही क्षण दूसरा आदमी भी गिरा। इस समय बन्दूक दबने का शब्द हुआ और लोचन लड़खड़ा कर गिरा। शेष आदमी दीवाल पर चढ़ कर दूसरी ओर कूद गये। बन्दूक का शब्द होने से जमींदार साहब तथा अन्य लोग जाग पड़े। जमींदार साहब अपनी बन्दूक संभाल कर उठे, परन्तु वहाँ मैदान साफ हो चुका था।

× × ×

लोचन बहुत बुरी तरह घायल होगया था। उसके घाव से रक्त-स्राव हो रहा था और वह क्रमशः शिथिल होता जा रहा था। क्षण-मात्र से गाँव भर में हल्ला हो गया। गांव के कुछ लोग डेरे की ओर भागे उनमें लोचन का पिता मोहन भी था। मोहन लोचन की यह दशा देखकर रो पड़ा और लोचन से बोला—"अरे बेटा यह क्या किया ?"

लोचन क्षीण स्वर में बोला—"बप्पा, गुस्सा आ गया! मेरे रहते मेरे मालिक को लूटने आये—यह सोचकर गुस्सा आ गया।"

एक व्यक्ति बोला—"हमारी समझ में तो इसे पहली दफा गुस्सा आया! नहीं तो हमने इसे किसी पर गुस्सा होते नहीं देखा।"

"और सब लोग इसे कायर समझते थे।"

"हाँ जी सभी आदमी बेचारे को डपट लेते थे।"

लोचन की जीवन-शक्ति का ह्रास होता गया। और एक घण्टा व्यतीत होते होते उसके प्राण पखेरू उड़ गये। रक्त बन्द करने के लिए देहाती उपचार किये गये। परन्तु रक्तस्राव बन्द न हुआ। लोचन के अन्तिम शब्द थे—"बप्पा, अपने इस खोटे बेटे का कसूर माफ करना।"

जमींदार साहब ने लोचन के नाम पर गाँव में एक छोटा सा मन्दिर तथा कुंआ बनवा दिया। जानकार लोग बात पड़ने पर कहते हैं—"यह एक नालायक बेटे की निशानी है।